॥ श्रीः ॥

श्रीमहर्षिपतञ्जलिप्रणीतं

योगदर्शनम् ।

आगरामण्डलान्तर्गतताजगंजाख्यवासिश्रीमत्पण्डितगुरु-
दयालस्यात्मज-श्रीमत्पण्डितरामभक्तविरचितछन्दो-
बद्धदेशभाषाकृतव्यासभाष्यछायाऽनुरूप-
वार्तिकतिलकसमेतम् ।

तच्च

श्रीकृष्णदासात्मज-गंगाविष्णोः
स्वकीये "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" मुद्रणयन्त्रालये
रामचन्द्र राघो इत्यनेन स्वाम्यर्थं
मुद्रितं प्रकाशितं च

संवत् १९७०, शके १८३५.

कल्याण-मुंबई.

भूमिका।

यह योगदर्शन श्रीमत् महर्षि पतञ्जलिने सर्व जगतमात्रके सुखके निमित्त संस्कृत सूत्रोंमें निर्मित किया परंतु इस समयमें बहुधा लोग संस्कृतविद्यासे शून्य होनेके कारण इससे लाभ नहीं उठा सक्ते इस लिये श्रीमत् स्वामी जगद्देवाश्रमकी आज्ञानुसार मूल पंडित रामभक्त आगरा ताजगंजनिवासीसे सर्व साधारणके समझने और लाभ उठानेके अर्थ श्रीमत् महर्षि व्यासभाष्यानुसार छंदोबद्ध दोहा, चौपाई, छन्द, सोरठामें रचना कर उसका तिलकभी वार्तिक सरल देशभाषामें आज पौषशुक्ल ७ शनिवार संवत् १९६७ विक्रमीयको पूर्ण किया गया है। यह पुस्तक सर्व साधारण और साधु महात्माओंको परमोपयोगी है इसके दृढ साधन और अभ्यास करनेसे प्राणीको सर्व सुखोंका मूल जो मोक्षसुख है वह प्राप्त हो सक्ता है फिर अणिमादि सिद्धि तो कुछ दुर्लभही नहीं. अब पठन पाठन करनेवाले सज्जनोंसे सविनय प्रार्थना है कि जहां कहीं त्रुटि और भूल रह गई हो तो कृपापूर्वक सुधार लेय इत्यलम्।

आपका कृपाभिलाषीः-

रामभक्त.

ॐ परमात्मने नमः ।

महर्षिपतञ्जलिप्रणीत

योगदर्शन ।

भाषाछन्दोबद्ध और वार्तिकटीकासहित.

मंगलाचरणम्

नत्वा रामं चिदानन्दं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।
योगभाष्यं सभाषार्थं छन्दोबद्धं करोम्यहम् ॥

श्रीहलधर प्रभुके चरण, वंदि कहौं कर जोर ।
हुए दयाल पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोर ॥
चरणकमल वंदन करौं, पातंजलिमुनिराय ।
योगशास्त्रभाषा करौं, व्यासभाष्यका छाय ॥

अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

दो०—अथ मंगल और योग कह, जानहुँ वृत्तिनिरोध ।
अनुशासनते जानिये, प्रतिपादन चितबोध ॥

अर्थ—अथशब्द मंगलवाची और योगशब्दसे चित्तकी वृत्तियोंका निरोध और अनुशासन प्रतिपादन अर्थमें जानना चाहिये अर्थात् अथशब्दसे मंगलपूर्वक योगके उपयोगी साधन और सामिग्रियोंसहित योगको प्रतिपादन करते हैं ॥

भाष्य दो०—अब साधनकर सहित सब, शिक्षायोग बखान ।
अधिकारी सम्बन्ध फल, विषय चार पहिचान ॥

चौ०-जिज्ञासू अधिकारी जानो । विषय योग कह तुम अनुमानो ॥
अधिकारीके चितकी वृत्ती । करत योगसंबंध सुवृत्ती ॥
मोक्षरूप तिहिं फल अनुमानो । चहुँ अनुबंध योगकर जानो ॥
सो हम कहे सकल समुझाई । सुनताहि मिटहि सकल दुचिताई ॥

दो०-योगशास्त्रके विषयकर, लक्षण कहत सुनाय ।
सुन साधन जो करत हैं, चित्त निरोध कराय ॥

अर्थ-अब साधनसहित योगशिक्षाको कहते हैं । योगशास्त्रके चार अनुबंध हैं अधिकारी १, विषय २, सम्बंध ३ और फल ४ 'अधिकारी' को जिज्ञासू 'विषय' को योगशास्त्र 'सम्बंध' अधिकारीके चित्तकी वृत्तियां और योगके संयोगको कहते हैं और 'फल' सम्बंधका प्रभाव मोक्ष है इसके समझने और सुननेसे चित्तका दुश्चितन मिट जाता है. अब योगशास्त्रके विषय और लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥

दो०-चितकी वृत्तिनिरोधको, योग कहत मुनिराय ।
करत योग अभ्यासके, चितनिरोधको पाय ॥

अर्थ-चित्तकी वृत्तियोंके निरोधका नाम योग है तिस योगअभ्यास करनेसे चित्तनिरोध होता है ॥

भा. चौ०-चितकी वृत्ति रुकतहाहिं जबहीं। पावन योग कहावत तबहीं॥
द्वै प्रकारको योग कहावत । तिहिमहँ संप्रज्ञात बतावत ॥
असम्प्रज्ञात तुम दूजो जानो। तिनकी पांच भूमि अनुमानो॥
सो अब कहत सुनो सब भाई । पृथक् पृथक् वर्णहु चितलाई॥

दो०-क्षिप्र मूढ विक्षिप्त पुनि, एकाग्र और निरुद्ध ।
प्रथम तीन महँ योग नाहिं, उत्तरकी युग शुद्ध ॥
रज औ तमते तीन हैं, द्वै सतगुणते जान ।
उत्तरकी युग करतहाहिं, साक्षात मोक्ष प्रदान ॥

अर्थ-चित्तकी वृत्तियोंके रुक जानेसे पवित्र योग होता है सो योग दो प्रकारका है एक सम्प्रज्ञात दूसरा असम्प्रज्ञात तिन दोनों योगोंकी पांच भूमि हैं तिनका वर्णन पृथक् पृथक् किया जाता है उसको चित्त लगाकर सुनो क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध पर इन पांचोंमेंसे प्रथमकी तीन भूमियोंमें योग नहीं होता है अगली दोनों भूमि शुद्ध हैं, क्योंकि पहली तीन तो रजोगुण और तमोगुणसे होती है और पिछली दोनों सतोगुणसे होनेसे शुद्ध और योगको उत्पन्न कर मोक्षकी देनेवाली हैं॥

चौ०-सतगुण कर एकाग्र चित्तको । तब निरोध रज तमस वृत्तिको ॥
सब अदृष्टिहू दीख परत जस । नासत क्लेश अविद्याके तस ॥
सम्प्रज्ञात कहावत सोई । केवल वृत्ति सतोगुण होई ॥
सात्विक वृत्ति निरोध होत जब । शेष रहत है संसकार तब ॥
जब नाहिं उठाह वृत्ति कोउ चितमें । असम्प्रज्ञात जानिये स्थितमें ॥
मत कोउ संशय कर मनमांही । निर्मल योग कतहुँ भ्रम नाहीं ॥
रजगुण चंचल क्षिप्त कहावत । तम आलसवश मूढ बतावत ॥
अथवा अति चंचल विक्षिप्ता । करत योगसाधन सब गुप्ता ॥

दो०-यदि कोउ अपने चित्तमहँ, संशय कर भ्रम लाय ।
त्रिगुणात्मिक वृत्ती महा, सो निरोध किमि पाय ॥

अर्थ-सतोगुणसे जब एकाग्र चित्त होता है तब सब चित्तकी वृत्तियां रुक जाती हैं उसी केवल सतोगुणी वृत्तिका नाम सम्प्रज्ञात योग है और जब सतोगुणी वृत्तियोंकाभी निरोध हो जाता है और केवल संस्कारमात्रही शेष रहजाता है और फिर चित्तमें किसी वृत्तिका उदय नहीं होता तब असम्प्रज्ञात योगकी स्थिति जाननी चाहिये इसमें कुछ संशय नहीं यही भ्रमरहित निर्मल योग है और रजोगुणसे जब चित्त चंचल होता है तब चित्तकी क्षिप्त और तमोगुणसे जब अत्यंत आलसी होता है तब मूढ अथवा चित्त अत्यंत चंचल होनेसे विक्षिप्त कहाता है यह तीनों चित्तकी अवस्था योगसाधनोंको गुप्त कर लेती हैं यदि कोई भ्रमवश ऐसा संशय करे कि वृत्तियां त्रिगुणात्मिका अपार हैं वे कैसे रुक जाती हैं तो इस संशयके निवारण करनेके निमित्त महर्षि अगले सूत्रसे समाधान करते हैं ॥ २ ॥

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥

दो०-तब द्रष्टा निज रूपमें, कर स्थित सुख मान ।
पुनि न भ्रमत चित अनत कहुँ, निज स्वरूप पहिचान ॥

अर्थ-जब वृत्तियोंका निरोध हो जाता है तब द्रष्टा अपनेही रूपमें स्थित होता है और अपने स्वरूपके चीन्ह लेनेसे उसे अत्यंत सुखकी प्राप्ति हो जाती है फिर चित्त वहीं सुख पानेसे दूसरी जगह नहीं जाता है ॥

भाष्य दो०-जैसे गुडहल पुष्पके, दूर होत भ्रम जात ।
शुद्धिरूप स्फटिकको, अपने आप दिखात ॥

अर्थ-जैसे स्फटिकके नीचेसे गुडहल पुष्पके दूर हो जानेसे गुडहलपुष्पजनित रक्तता दूर हो जाती है और स्फटिकका शुद्ध श्वेत स्वरूप भासित होता है वैसेही चित्तकी वृत्तियोंके निरोध हो जानेसे पुरुष अपने शुद्ध स्वरूपको पाय स्थित हो जाता है ॥ ३ ॥

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

दो०-वृत्तिनिरोध न होत जब, द्रष्टा वृत्तिस्वरूप ।
इतर अत्र ते जानिये, पृथक् रहत निज रूप ॥

अर्थ-जबतक वृत्तियोंका निरोध नहीं होता तबतक द्रष्टा अर्थात् पुरुष वृत्तियोंके स्वरूपमें मिला हुआ रहनेसे वृत्तिस्वरूपके तुल्यही प्रतीत होता है अपने निज स्वरूपसे पृथक् रहता है ॥

भाष्य दो०-जबलग रुकहिं न चित्तकी, वृत्ती महाकठोर ।
तबलग द्रष्टा वसत है, वृत्तिमाहिं कर ठोर ॥
द्रष्टामें तोहू नहीं, दोष जानिये तात ।
जैसे गुडहल पुष्पसों, स्फटिका दोष न पात ॥

अर्थ-जबतक महाकठोर चित्तकी वृत्तियोंका निरोध नहीं होता तबतक द्रष्टा (पुरुष) चित्तकी वृत्तियोंमें स्थान बनाकर रहता है परंतु वृत्तियोंरूप स्थानमें रहनेसे द्रष्टा दोषभागी नहीं होता जैसे गुडहलफूलके नीचे आजानेसे स्फटिक दोषभागी नहीं होता केवल अज्ञानसे स्फटिकमें गुडहलके पुष्पकी रक्तता प्रतीत होनेसे स्फटिकको ही रक्त कहा जाता है परंतु स्फटिक सदैव शुद्ध श्वेतरूप है इसी प्रकार

वृत्तियोंके संयोगसे द्रष्टा वृत्तिस्वरूपसाही भ्रमसे प्रतीत होने लगता है वृत्तिसंयोगके रहित होनेसे द्रष्टा शुद्ध प्रतीत होता है वास्तवमें द्रष्टा सदा शुद्धस्वरूप है ॥ ४ ॥

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

दो०-वृत्ती पांच प्रकारकी, क्लिष्टाक्लिष्ट बखान ।
तिहि निरोधते होत है, योगशक्ति बलवान ॥

अर्थ-चित्तवृत्ति पांच प्रकारकी होती है उसके क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो भेद हैं इन वृत्तियोंके निरोध हो जानेसे योगशक्ति बलवान् होती है ॥

भा. चौ.-तिनके नाम गनावत गावत । माण विपर्य्य विकल्प सुनावत ॥
निद्रा स्मृति नाम कहावत । अब इनको सब अर्थ बतावत ॥
राग द्वेष मोहादिक हेतू । वृत्ती क्लिष्ट दुखद जिमि केतू ॥
मोक्षप्रदा अक्लिष्टा जानहुं । रोकति क्लिष्ट वृत्ति अनुमानहुं ॥

अर्थ-तिनके नाम प्रमाण १ विपर्य्यय २ विकल्प ३ निद्रा ४ स्मृति ५ हैं राग-द्वेष मोह आदिकी उत्पन्न करनेवाली क्लिष्ट वृत्तियां हैं और इन राग द्वेष मोहादिके दूर करनेवाली वृत्तियोंको अक्लिष्टा जानना चाहिये ये अक्लिष्टा वृत्तियां साधन और वैराग्यद्वारा प्राणीको मोक्षसुखकी देनेवाली हैं ॥ ५ ॥

प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ ६ ॥

दो०-प्रमाण विपर्य्य विकल्प, और निद्रा स्मृति जान ।
पांच भेद चितवृत्तिकर, मुनिवर करत बखान ॥

अर्थ-प्रमाण १ विपर्य्यय २ विकल्प ३ निद्रा ४ स्मृति ५ यह पांच भेद चित्तकी वृत्तियोंके मुनिवर्य पातंजल कहते हैं ॥ ६ ॥

प्रत्यक्षाऽनुमानाऽऽगमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

दो०-प्रत्यक्ष अनुमान और, आगम तीन प्रमाण ।
इनते जान्यो जात है, सत्यासत्य विधान ॥

अर्थ-प्रत्यक्ष १, अनुमान २, आगम ३, इन तीनोंकी प्रमाण संज्ञा है इनसे सत्य और असत्य पदार्थका ज्ञान होता है ॥

भा. चौ०–इन्द्रियजन्यरहितव्यभिचारा।व्यवसायात्म प्रत्यक्ष पसारा॥
पूर्व देख जस मानत तैसो । तिहि अनुमान जनावत ऐसो ॥
भ्रमकर रहित सत्य जिहि ज्ञाना । तासु वाक्य आगम अनुमाना॥
तीन प्रमाण कहे समझाई । तातें सत्य ज्ञान प्रकटाई ॥

अर्थ–इन्द्रियद्वारा उत्पन्न व्यभिचाररहित अर्थात् अन्यान्य ज्ञानसे रहित निश्चयात्मक जो ज्ञान है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं जैसा कि पूर्व निश्चयात्मक प्रत्यक्ष ज्ञान हो चुका है उसी प्रकार मान लेनेको अनुमान और भ्रमरहित सत्य जिसका ज्ञान ऐसे आप्त पुरुषके वाक्यको आगम प्रमाण कहते हैं । इन प्रमाणोंके द्वारा सत्य असत्यका विवेक होता है ॥ ७ ॥

विपर्य्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥

दो०–जैसो जौन पदार्थ है, तस नहिं भासत सोइ ।
मिथ्याज्ञानप्रभावते, ज्ञान विपर्य्यय होइ ॥

अर्थ–जो पदार्थ जैसा है वैसा न दीखे विपरीत भासे मिथ्याज्ञान होनेसे उसे विपर्य्यय ज्ञान कहते हैं ॥

भा. चौ०-संशय होत विपर्य्य विकल्पा । दोनों एकरूप संकल्पा ॥
भेद कहा इन दोहूमांही । सो समुझाय कहहु मोपाही ॥
मिथ्याज्ञान होत जिहिमांही । जैसे रज्जु सर्प भ्रमलाई ॥
रज्जू सत्य सर्प भ्रमरूपा । ज्ञान असत्य विपर्यस्वरूपा ॥
मिथ्या वस्तु विकलपज्ञानमें । नहिं केवल विपरीति भानमें॥
मानुष शृंग सुनत जो सांचा। मान लेत निज मति भ्रम राचा॥
यद्यपि शृंग मनुष दोउ सत्या । मानुष शृंगवान नहिं सत्या ॥
ताते सूत्रकार समझावहिं । उत्तर सूत्र विकल्प बतावहिं ॥

अर्थ–विपर्य्यय ज्ञान और विकल्पज्ञान दोनोंकी तुल्यता प्रतीत होनेसे दोनों एकही हैं फिर विकल्प कथन करनेका क्या प्रयोजन है इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि विपर्य्यय ज्ञानमें केवल ज्ञानही मिथ्या होता है वस्तु पदार्थ सत्य होता है विकल्पमें मिथ्या ज्ञानके सिवाय वस्तुभी मिथ्या होती है जैसे रस्सीमें सर्पका ज्ञान

रस्सी सत्य पदार्थ है सर्पका ज्ञान मिथ्या है वह विपर्य्यय ज्ञान कहाता है विकल्प-ज्ञान जैसे मनुष्यके सींग सुनकर सत्य मान लेना विकल्प है यद्यपि मनुष्य सत्य है और शृंगभी सत्य है तथापि मनुष्यके सींग यह महा असत्य है इससे यह ज्ञान हुआ कि वस्तु अर्थात् मनुष्यके सींगभी मिथ्या और मनुष्यके सींग मान लेना ऐसा ज्ञानभी मिथ्या है सो जिसमें पदार्थ और पदार्थज्ञान दोनों मिथ्या हों उसे विकल्प कहते हैं इसीसे सूत्रकार आगेके सूत्रसे विकल्पका लक्षण कहते हैं ॥ ८ ॥

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

दो०–शब्द श्रवणते होत है, वस्तुशून्यको ज्ञान ।
मुनिवर ताहि विकल्प कह, लेउ सत्य जिय मान ॥

अर्थ–शब्द सुननेसे जो शून्य वस्तुका ज्ञान हो जाता है उसे मुनिवर विकल्प ज्ञान कहते हैं इसमें वस्तुकी शून्यता और मिथ्या ज्ञान दोनों होते हैं इतनाही विपर्य्यय ज्ञानमें और इसमें भेद है ॥

दो०–जैसे शशके शृंग सुन, मान लेत जो सांच ।
तिनकी बुद्धि विकलपयुत, मणिहि बतावत कांच ॥

अर्थ–जैसे खरगोशके सींग नहीं होते और जो सुनकर खरगोशके सींगोंको सत्य मान ले और बुद्धिके विकल्पसे मणिको कांच बतावे उस बुद्धिको विकल्प कहते हैं॥९॥

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

दो०–अखिल वस्तुको ज्ञान जब, रहत नहीं चितमाहिं ।
आश्रयज्ञानअभावके, निद्रावृत्ति कहाहि ॥

अर्थ–जब संसारकी किसी वस्तुका ज्ञान नहीं रहता तब ज्ञानके अभावसे वह निद्रावृत्ति कहाती है ॥

भा. चौ.-अभावहेतु तामस कह जानो । हेतुरूप प्रत्यय अनुमानो ॥
ताको वृत्ति अलंबन करही । निद्रावृत्ति कहावत तबही ॥
जाग्रत और स्वप्नकर ज्ञाना । रहत न ज्ञान सुषुप्तिसमाना ॥
होत अभाव सकल दुख सुखको।ज्ञान रहत नहिं जीव मृतकको॥

अर्थ-अभावका कारण तमोगुणको जानना चाहिये और उस तमोगुणको जब चित्तकी वृत्ति आलंबन करती है उस समय ज्ञानका अभाव होनेसे निद्रावृत्ति होती है जाग्रत और स्वप्नका ज्ञानभी उस समय नहीं रहता और न दुःख सुख जीवन मरणका ज्ञान होता है उसीको निद्रावृत्ति कहते हैं ॥ १० ॥

अनुभूतविषयाऽसम्प्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

दो०-पूरवमें जो जो विषय, करत रहे अनुभूत ।
तिनको पुनि चितमें उदय, स्मृति कहत सुपूत ॥

अर्थ-पूर्वकालमें जो जो विषय अनुभूत हो चुके हैं तिनकाही फिर चित्तमें उदय हो जानेका नाम स्मृति है ॥

भा. चौ.-भूतकाल अनुभव जाहीको । स्मृतिरूप उदय ताहीको ॥
पै नहिं परअनुभवकृत जानो । निज अनुभव कर स्मृति मानो ॥
वृत्तिरूप पांचों हम तोसों । कही बुझाय बूझि जो मोसो ॥
इनको जान त्याग जो देई । तब जानत आतम निज गेही ॥

अर्थ-भूतकालमें जिस पदार्थका अनुभव हो चुका है उसीका फिर चित्तमें उदय हो जानेका नाम स्मृति है परंतु परकृत अनुभवका नाम स्मृति नहीं है स्वकृत अनुभवका नाम स्मृति है इस कारणसे सूत्रमें असम्प्रमोष शब्द दिया गया है यह पांचों वृत्तियोंके स्वरूप वर्णन किये इनको जानकर इनके त्याग देनेसे अपनी आत्माको जानता है ॥ ११ ॥

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

दो०-अभ्यास और वैराग्यते, वृत्ती होत निरोध ।
वृत्ति के अवरोधतें, होत आत्मकर बोध ॥

अर्थ-अभ्यास और वैराग्यसे वृत्तियोंका निरोध होता है और वृत्तियोंके निरोधसे आत्मज्ञान होता है ॥

भाष्य दो०-जो वृत्ती वर्णन करीं, चितसों करत विरुद्ध ।
अभ्यास और वैरागते, तिनको होत निरुद्ध ॥

अर्थ-पूर्वमें जो चित्तकी पांच वृत्तियां वर्णन की गई हैं वे सब चित्तको दुःख देनेवाली हैं उन वृत्तियोंका अभ्यास और वैराग्यसे निरोध होता है ॥ १२ ॥

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

दो०-निरोधादि थितके निमित, यत्न कह्यो अभ्यास ।
अनुष्ठान कर यत्नको, आत्मा करत प्रकास ॥

अर्थ-निरोध और चित्तकी स्थितिके लिये जो यत्न किया जाता है उसका नाम अभ्यास है यत्नके अनुष्ठान करनेसे आत्माका प्रकाश होता है ॥ १३ ॥

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः १४॥

दो०-नैरंतर सत्कारयुत, सेवित दीरघ काल ।
दृढभूमी तब जानिये, होय अभ्यास विशाल ॥

अर्थ-निरन्तर सत्कारपूर्वक दीर्घकालतक अभ्यास करते करते अभ्यास बलवान और दृढ हो जाता है ॥ १४ ॥

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम् ॥ १५ ॥

दो०-जोन जोन देखे सुने, इहामुत्रके भोग ।
तिनकी तृष्णाते रहित, वसीकार समयोग ॥

अर्थ-जो जो भोग विलास इस लोकके देखे हैं और परलोक अर्थात् स्वर्गादिके सुन रखे हैं उन सबका लालच जब मनसे जाता रहता है तब वसीकारसंज्ञा वैराग होता है ॥

भाष्य दो०-दीर्घकाल श्रद्धासहित, ब्रह्मचर्य तप साध ।
इहिं प्रकार कर चित्त दृढ, करहिं न वृत्ती बाध ॥

अर्थ-बहुत कालपर्यंत श्रद्धासहित ब्रह्मचर्य और तपके साधन करनेसे चित्त दृढ निश्चल हो जाता है तब कोई वृत्ति चित्तको बाधित नहीं होती है ॥

चौ०-जो जो विषय सुने और देखे । तिनकी तृष्णा चितसों छेके ॥
वसीकारसंज्ञा वैरागा । मुनिवर ताको करहि विभागा ॥
यतमान व्यतिरेक जनावत । एकेन्द्रिय वसिकार बतावत ॥
भोगनकी इच्छाको त्यागा । कहत ताहि यतमान विरागा ॥

दो०-छांडत दृढ कर भोग सब, गृहत पूर्ण संतोष ।
व्यतरेका और इन्द्रिजय, एकेन्द्रिय सम कोष ॥
तीनोंके लक्षण मिलैं, वसीकार सो जान ।
चार रूप वैराग्यके, तुमसन किये बखान ॥

अर्थ-जो जो विषय देखे और सुन रक्खे हैं उन सबका लालच जब मनसे जाता रहै उसे वसीकार वैराग्य कहते हैं वह चार प्रकारका होता है १ यतमान २ व्यतिरेक ३ एकेन्द्रिय ४ वसीकार इसमें सर्व भोगोंकी इच्छाका त्याग यतमान और दृढपूर्वक सब भोगोंको त्यागकर पूर्ण संतोष धारण कर लेनेका नाम व्यतिरेक और इन्द्रियोंको जीत लेनेका नाम एकेन्द्रिय है और इन तीनोंके सब लक्षण जिसमें मिले उसे वसीकार वैराग्य कहते हैं यह चारों वैराग्यके रूप वर्णन किये गये हैं ॥ १५ ॥

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

दो०-निजस्वरूपके ज्ञानते, गुणतृष्णा मिट जात ।
प्रकटत परवैराग्य तब, पुरुष भिन्न दिखरात ॥

अर्थ-जब अपने स्वरूपका ज्ञान हो जाता है तब तीनों गुणोंसे उत्पन्न हुआ भया विषयोंका लालच मिट जाता है और परवैराग्य प्रकट हो जाता है तब पुरुष अर्थात् आत्मा सबसे भिन्न प्रतीत होने लगता है ॥

भा. चौ.-पूरब कह्यौ अपर वैरागा । अब परवैराग्य सुनहुं जिय लागा ॥
रज तम सत्व विषयकी तृष्णा । नास होत वैराग वितृष्णा ॥
जासे पुरुष धर्म कर ज्ञाना । धर्ममेघसंज्ञा सोइ जाना ॥
पुरुषख्याति अथवा वसिकारा । उपजत गुण वैतृष्ण पसारा ॥

दो०-तीनों गुणके विषयकी, तृष्णा तनक न होय ।
आत्मा ब्रह्मानन्दसुख, मगन रहत है सोय ॥

अर्थ-पूर्वमें अपर वैरागको कहकर अब परवैराग्यको कहते हैं । जब सत्वगुण रजोगुण तमोगुणके विषयोंकी तृष्णा नाश हो जाती है तब वितृष्णासंज्ञा वैराग्य होता है उससे पुरुषधर्मका ज्ञान होता है इसी पुरुषधर्मकी धर्ममेधसंज्ञा जाननी चाहिये संस्कृतमें इसका भाव यह है कि धर्मका विशेष सिंचनको धर्ममेध कहते हैं अर्थात् कैवल्यस्वरूप अशुक्ल अकृष्ण कर्मोंका विशेष सिंचन धर्ममेध कहाता है । जब तीनों गुणोंके विषयोंकी किंचित्‌भी तृष्णा नहीं होती तब आत्मा ब्रह्मानंदके सुखमें डूबा रहता है ॥ १६ ॥

वितर्कविचाराऽऽनन्दास्मितारूपाऽनुगमा-त्संप्रज्ञातः ॥ १७ ॥

दो०-वितर्क विचार आनन्द और, अस्मितादि चहुँ रूप ।
संप्रज्ञात विरागके, जानहु चार स्वरूप ॥

अर्थ-वितर्क १ विचार २ आनन्दा ३ अस्मिता ४ ये चार रूप संप्रज्ञात योगके जानने चाहिये ॥

भाष्य दो०-अब हम सम्प्रज्ञातको, तुमसन कहत विचार ।
असम्प्रज्ञातहू कहत हैं, भवदुख टारनहार ॥

चौ०-सम्प्रज्ञात चतुर्धा जानो । वितर्क विचार अनन्दा मानो ॥
अस्मितारूप चतुर्थ बखानहु । संप्रज्ञात भेद मन मानहु ॥
जो जन लक्ष वेधिवो चाहै । वाहिकर धनुष बाण ताकि ताहै ॥
प्रथम स्थूल लक्ष कहँ वेधै । तदुपारि सूक्ष्म लक्ष्यको छेधै ॥

दो०-स्थूल धारणा करत हैं, प्रथमहि योगी मीत ।
तासे सुगमहिं लेत हैं, सूक्ष्म धारणा जीत ॥

अर्थ-अब सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दोनों वैराग्योंको कहते हैं सो संप्रज्ञात योग वितर्क १ विचार २ आनंदा ३ अस्मिता ४ रूप चार प्रकारका होता है जैसे निशाना मारनेवाले अभ्यासी पुरुष प्रथम स्थूल निसानेको वेधना सीखते हैं जब स्थूल निशाना वेधना आ जाता है तब सूक्ष्म निशाना लगाते हैं इसी प्रकार योगी

प्रथम स्थूल धारणा करे स्थूल धारणाके पूर्ण हो जानेसे फिर सूक्ष्म धारणाभी सुगम हो जाती है ॥

दो०—उत्तम ध्यान विराटको, स्थूलरूपमें जान ।
तदुपर राम औ कृष्ण प्रभु, कराहि विष्णुको ध्यान ॥

चौ०—साक्षात्कार होय इनका जब । पूरण भयो वितर्क योग तब ॥
ताके पाछे सूक्ष्मयात्रा । ध्यान कराहि पांचों तन्मात्रा ॥
तिनको साक्षात्कार भयेपर । कहत विचार योगसाधनकर ॥
इन्द्रियनको जो साक्षात्कारा । योगानन्दस्वरूप अपारा ॥

दो०—पुरुषबुद्धिकी होत जब, तन्मयता सुखखान ।
योग अस्मिता जानिये, सत्तामात्र सुजान ॥

अर्थ—इसलिये योगीको प्रथम स्थूलरूप जो विराट है उसका ध्यान करना उत्तम है इसके सिद्ध हो जानेपर शनैः शनैः राम तथा कृष्ण अथवा विष्णुके स्वरूपका ध्यान करे जब इनका पूर्ण साक्षात् रूप दीखने लग जावे तब वितर्कयोगकी पूर्णता जाननी चाहिये और इसके अनंतर सूक्ष्म रूप जो शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गंध पंचतन्मात्रा तिनका ज्ञान विचारद्वारा सिद्धि हो जानेको विचारयोग कहते हैं इसके अनन्तर इन्द्रियोंका ध्यानद्वारा साक्षात्कार होजानेका नाम आनंदयोग है इसी प्रकार जब पुरुष और बुद्धिकी तन्मयता एकरूप हो जाना अर्थात् बुद्धिसे यह प्रतीत न होना कि मैं कौन हूं और किसका ध्यान करता हूं ध्येयाकार होजानेका नाम अस्मिता योग है इसमें केवल सत्तामात्र भासित होती है ॥ १७ ॥

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ १८ ॥

दो०—पूर्व कथित जो भावना, तिनके होत अभाव ।
संस्कारके शेषते, असम्प्रज्ञात कहाव ॥

अर्थ—प्रथम जो भावना अर्थात् वृत्तियां कही गई हैं तिनके अभाव होजानेपर जब संस्कार मात्र बाकी रह जाता है उसीको असंप्रज्ञात और परवैराग्य कहते हैं ॥

भाष्य दो०—वृत्तिनको जु अभाव है, ताको कहत विराम ।
प्रत्ययकारण जानिये, है विराम अस नाम ॥

करत योग अभ्यासके, शेष रहत संस्कार ।
असम्प्रज्ञात सुजानिये, परवैराग्य विचार ॥

चौ०—सम्प्रज्ञातके संस्कार जब । देत मिटाय राखि अपने सब ॥
ताहीको निर्बीज समाधा । मुनिवर कहहिं जिनन यह साधा ॥
ताते सब कर्मनके बीजा । नास होत पातक सब छीजा ॥
असम्प्रज्ञात कहतहाहिं वाको । दुइ प्रकारको मारग ताको ॥

अर्थ—वृत्तियोंके अभावको विराम और कारणको प्रत्यय कहते हैं सो जो वृत्तियोंके अभावका करनेवाला जिसमें केवल संस्कार मात्र शेष रहता है उसको असंप्रज्ञात और परवैरागभी कहते हैं ॥

दो०—एक त्याग भव दुखद है, दूजो जानो ग्राहि ।
दुखप्रदको त्यागन करे, सुखप्रद अंग लगाहि ॥

अर्थ—तिन दोनोंमें एक दुःख देनेवाला त्यागनीय और दूसरा सुख देनेवाला ग्रहण करने योग्य है तिनमें त्यागनीयको प्रथम कहते हैं । जब असंप्रज्ञात वैराग होता है तब सम्प्रज्ञात वैरागके सब संस्कार मिट जाते हैं इसीको मुनीश्वर निर्बीज समाधिभी कहते हैं इससे सर्व कर्मोंके बीजोंका नाश होकर निष्पाप हो जाता हैं इस असम्प्रज्ञात योगके दो भेद हैं वह आगे सूत्रकार कहते हैं ॥ १८ ॥

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

सो०—प्रकृतिमाहिं जे लीन, सो विदेह पहिचानिये ।
जन्म मरण आधीन, भवप्रत्ययके वश भये ॥

अर्थ—जिस योगीका चित्त प्रकृतिमें लीन होता है वह विदेह कहाता है उसको भवप्रत्यय कहते हैं भव नाम संसारका है और प्रत्ययनाम कारणका है सो विदेह योगीका जन्ममरणरूप संसार नहीं छुटता क्योंकि यह प्रकृतिलय विदेहयोग भवसागरका कारण है इससे वह त्यागनीय है ॥

भाष्य दो०—भवप्रत्ययके रूपको, प्रथम कहत हम तोहि ।
संप्रज्ञातको पायकर, प्रकृति लीन जो होहि ॥

ताको भवप्रत्यय कहत, करत अविद्या हानि ।
डारत भवके कूपमें, त्याग देहु छति जानि ॥

अर्थ—अब भवप्रत्ययात्मक जो सम्प्रज्ञातका भेद है उसे कहते हैं। जब चित्त प्रकृतिमें लीन हो जाता है प्रकृतिमें लीन होनेसे विदेहभी कहाता है जो विदेह प्रकृतिलय है उसको भवप्रत्यय होता है इसका कारण अविद्या है यह भवप्रत्यय संसृतिके कूपमें डाल देता है इससे योगी इसको क्षति जानकर त्याग कर देवे १९॥

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूवक इतरेषाम् ॥ २० ॥

दो०—तज विदेह और प्रकृतिलय, पृथक योगिजन जोइ ।
ताको श्रद्धा वीर्य और, स्मृतिसमाधितें होइ ॥

अर्थ—विदेह और प्रकृतिलयको छोडके अन्य योगियों अर्थात् मुमुक्षुपुरुषोंको श्रद्धा वीर्य स्मृति और समाधिसे मुक्ति प्राप्ति होती है ॥

भा. चो.—मोक्षइच्छु पहिले श्रद्धा कर । वीर्यस्मृतिसमाधि प्रज्ञावर ॥
प्रथमाहिं होय सात्विकी श्रद्धा । तासे वीर्य यत्न परिसिद्धा ॥
यत्न कराहि संयम नियमादिक । उपज तासु स्मृति ध्यानादिक ॥
ध्यानते निपजत सत्य समाधा । ताते प्रज्ञा होत अबाधा ॥

दो०—प्रज्ञाके अभ्यासवश, हुइ है संप्रज्ञात ।
याही संप्रज्ञातते, परवैराग्य समात ॥
याही क्रमते होत है, यत्नप्रज्ञा पर्यंत ।
ताहीको मुनिवर कहत, हेतु उपाय अनन्त ॥

चौ०—संसकार पूरब चलि आवै । तब उपाइ प्रत्ययको पावै ॥
त्रिविधि उपाय करत अनयासा।मृदु और मध्याधिमात्र सुवासा॥
इन तीनोंके चय त्रिय जानो । मृदु और मध्य तीव्र अनुमानो॥
याही क्रमते मध्याधिमात्रा । जानहुं नव प्रकारकी मात्रा ॥

दो०—चिरचिरतर और क्षिप्रतर, सिद्धी प्रापति होय ।
शीघ्र शीघ्र तर शीघ्रतम, सिद्धी पावहि सोय ॥

पूरवके संस्कारवश, सिद्धी पावैं जोइ।
जैसो जाको यत्न है, तैसो पावत सोइ ॥
अब हम तीव्र सवेगको, कहत सुनो चितलाय।
तीव्रवेग वैरागको, और अधिमात्र उपाय ॥
अधिमात्रसंवेगते, शीघ्रही मिलत समाधि ।
असंप्रज्ञातके मिलतही, पावत मोक्ष अबाधि ॥

अर्थ–मुमुक्षुको प्रथम श्रद्धा होती है श्रद्धासे वीर्य अर्थात् प्रयत्न अर्थात् यम नियमादिक साधनद्वारा स्मृति अर्थात् ध्यान और ध्यानसे प्रज्ञा दृढ होती है प्रज्ञा अर्थात् सत्यसमाधिसे संप्रज्ञातयोग प्राप्त होता है इसी प्रकार श्रद्धासे लेकर प्रज्ञा-पर्यंतको मुनीश्वर यत्न और उपाय कहते हैं। पूर्वके संस्कारसे जैसा जिसका संस्कार होता है तैसेही उपायप्रत्ययको पाता है । उपाय प्रत्यय तीन प्रकारका होता है १ मृदु, २ मध्य, ३ अधिमात्र, इसी क्रमसे प्रत्येकके तीन तीन भेद हैं इस क्रमसे नव प्रकारके योगी होते हैं १ मृदुसंवेग, २ मध्यसंवेग, ३ तीव्रसंवेग ४ मध्य-मृदुसंवेग, ५ मध्यमध्यसंवेग, ६ मध्यतीव्रसंवेग, ७ अधिमात्रमृदुसंवेग, ८ अधि-मात्रमध्यसंवेग, ९ अधिमात्रतीव्रसंवेग जैसा जिसका उपाय होता है चिरकाल और चिरतरकाल और चिरतमकालमें अथवा क्षिप्र क्षिप्रतर क्षिप्रतम देरमें तथा बहुत देरमें वा सबसे जादा देरमें वा जल्दी बहुत जल्द सबसे जल्द सिद्धि प्राप्त हो जाती है २०

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

दो०–श्रद्धा आदिकयत्नते, तीव्र होत वैराग।
ताको फल शीघ्रही मिले, पाव मोक्षकर भाग ॥

अर्थ–इसमें जिस योगीका अधिमात्र उपायका तीव्र संवेग होता है उसे असंप्रज्ञात समाधिद्वारा बहुतही जल्दी मोक्षप्राप्ति होती है ॥ २१ ॥

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥

दो०–तीव्रवेगवैरागते, मृदुमध्याधिकमात्र ।
शीघ्र शीघ्रतर शीघ्रतम, है विशेष फलदात्र ॥

अर्थ–तीव्रसंवेग वैरागते मृदुमध्याधिक मात्र विशेष है क्योंकि मृदुतीव्रसंवेग, मध्यतीव्रसंवेग, अधिमात्रतीव्रसंवेग जल्द जल्दतर सबसे जल्द जानना चाहिये ॥

भा. चौ.–मृदु मध्याधि कहत अब मात्रा । पूरवसे उत्तर अधिमात्रा ॥
मृदुल तीव्र संवेग योगसों । मध्य तीव्र संवेग अधिक सो ॥
जो अधिमात्र तीव्र संवेगा । सबसे अधिक जानतिहिं वेगा ॥
जाको जैसो होत उपाई । सो तस शीघ्र पाव फल भाई ॥

अर्थ–मृदु, मद्य, आधि ये तीनों पूर्वसे उत्तरके अधिक फल देनेवाले हैं जैसे मृदुतीव्रसंवेगसे मध्यतीव्रसंवेग अधिक है और मध्यतीव्रसंवेगसे अधिमात्रतीव्रसंवेग अधिक है सो जैसा जिसका प्रयत्न होता है वह वैसी जल्दी सिद्धि पाता है ॥२२॥

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

दो०–अथवा ईश उपासना, शीघ्रहि मिलत समाधि ।
दृढपूर्वक धारण किये, मिटत सकल जगव्याधि ॥

अर्थ–अथवा ईश्वरके प्रणिधानसे शीघ्रही समाधि मिलती है जो दृढपूर्वक ध्यान करता है उसकी संसृतिरूपी व्याधि मिट जाती है ।

भा. दो–कायिक वाचिक मानसी, चित चिन्तन कर जास ।
ताको लक्षण कहत अब, ईश्वर करे प्रकाश ॥

अर्थ–काया मन और वाणीसे जिसका चिन्तवन करना चाहिये उस ईश्वरके लक्षणोंको सूत्रकार कहते हैं कि उस ईश्वरके प्रकाशको उन लक्षणोंसे जानना चाहिये २३॥

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥

दो०–क्लेशकर्मफलरहित जो, आशय सुखदुखहीन ।
असंबद्ध जो पुरुष है, ईश्वर जानहु चीन ॥

अर्थ–क्लेश, कर्मफल और अविद्या सुख दुःखसे जो रहित और सब बंधनोंसे रहित है वह ईश्वर है ॥

भा. चौ.–कर्म विपाक क्लेश और आशय।इनते रहित पुरुष परकाशहि॥
अस्मिता अविद्या राग और द्वेषा । अभिनिवेश यह पञ्च कलेशा ॥

कर्म अधर्म धर्म तिनके फल । तिनते रहित ईश अति निर्मल ॥
ईश्वरके लक्षण यह जानहु । तिहिंकर ध्यान हृदयमें ठानहु ॥

अर्थ—कर्मविपाक अर्थात् शुभाशुभ कर्मोंके फल और अविद्याजनित सुखदुःखरूप बंधनोंसे जो रहित अस्मिता अविद्या राग द्वेष और अभिनिवेश यह पंच क्लेश धर्माधर्मकर्मोंके फलसे रहित निर्मल निष्कलंक ईश्वरका लक्षण है इन लक्षणोंसे संपन्न ईश्वरका ध्यान दृढपूर्वक करे ॥ २४ ॥

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ २५ ॥

दो०—यथातथ्य सर्वज्ञता, बीज ईश कह जान ।
निरअतिशय सोइ जानिये, नून्याधिक नहिं मान ॥

अर्थ—जैसा चाहिये वैसा न्यून्याधिकतासे रहित ईश्वर सर्वज्ञताका बीजरूप है अर्थात् सर्वज्ञ है उससे विशेष कोई और सर्वज्ञ नहीं है इसीसे ईश्वर निरातिशय सर्वज्ञताका बीज है ॥

भा. चौ.-तत्र निरतिशय सर्वज्ञ बीजा । करत अर्थ पातक सब छीजा ॥
जासे अधिक अन्य नहिं कोई । ताते नाम निरतिशय होई ॥
जाकर ज्ञान निरतिशय होई । अति सर्वज्ञ कहावत सोई ॥
न्यून्याधिक जहां ठहरत नाहीं । ज्ञाननिरतिशय ताके माहीं ॥

अर्थ—अब निरातिशय सर्वज्ञबीज इस सूत्रका अर्थ करते हैं कि जिसके जान लेनेसे पातकोंका नाश होता है जिसका ज्ञान निरातिशय होता है वही सर्वज्ञताका बीज है निरातिशयशब्दका यह भाव है कि जिससे न तो न्यून कहनेमें आ सके और न अधिक कहा जा सके ऐसे स्थानको निरातिशय कहते हैं सो ईश्वर इस प्रकार सर्वज्ञताका बीज है कि उससे सर्वज्ञतामें न तो कोई कम है और न कोई जादा है अर्थात् यथार्थ सर्वज्ञ है ॥ २५ ॥

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥

दो०—कालते अवछिन्न नहिं, तिहिं कारणते ईश ।
ब्रह्मा आदिकको गुरू, गावत जाहि मुनीश ॥

अर्थ–कालके भेद अर्थात् तीनों कालसे रहित सदा एकरस रहनेवाला होनेसे ब्रह्मा विष्णु शंकर आदिकका भी गुरु है क्योंकि ब्रह्मा आदिक सब कालावच्छिन्न हैं अर्थात् उत्पत्तिविनाशवान् हैं ॥

भाष्य दो०–जो कहु संशय होय अस, हरि शिवादि उपदेश ।
ता कारणते कहत अब, सूत्रकार आदेश ॥

छंद०–सो ईश है तिनसों अधिक जिन पूर्वमें सिद्धी लही ।
काळ और परिमाणसों जो है रहित गुरुता गही ॥
सो पूर्व सिद्धनको गुरू जिहि काल अवछेदन करे ।
पूर्वके योगीश शिव हरि कालके आश्रित परे ॥
काळ और परिमाणसों है रहित सो गुरु सर्वको ।
आधीन है सब कालके परिणामवश कर सर्वको ॥
तस्य वाचक प्रणव अरु ओंकार जाको नाम है ।
ताहि जपकर अर्थ भावन आतमा सब ठाम है ॥

अर्थ–जो कदापि ऐसा संशय होय कि ईश्वर, ब्रह्मा तथा विष्णु अथवा शिवका नाम है इस संशयके समाधानके निमित्त सूत्रकारने यह सूत्र कहा है कि वह ईश्वर उन सबकाभी गुरु है जिन्होंने पूर्वमें सिद्धि प्राप्ति की है क्योंकि ईश्वर काल और परिमाणसे रहित है इससे गुरुरूप हैं इसीसे वह पूर्व सिद्धोंका भी गुरु है पूर्वके योगीश ब्रह्मा-विष्णु शिवादि सब कालके आश्रय रहे हैं और ईश्वर काल और परिमाण आदिसे रहित निराश्रय होनेसे सबका गुरु है संपूर्ण कालके आधीन हैं और परिणामके वश है सिवाय एक ईश्वरके कि जिसका नाम ॐकार है इससे इस नामको अर्थसहित भावना कर जप करना चाहिये ॥ २६ ॥

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

दो०–प्रणव कहत ॐकारको, है ईश्वरको नाम ।
सुमिरणते सब दुख कटत, चित्त लहत विश्राम ॥

अर्थ–प्रणवनाम ॐकार परमेश्वरका नाम है इस नामके सुमिरणसे सर्व दुःखोंका नाश होकर चित्त विश्रामको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

दो०—ओंकारजप अर्थयुत, अर्थअनुरूप स्वरूप ।
ईश्वरकी कर भावना, भासत रूप अनूप ॥

अर्थ—ॐकारशब्दका अर्थ विचारता हुआ अर्थके अनुसार रूपका ध्यान करता भया जप करनेसे अनुपम ईश्वरका स्वरूप भासित होता है ॥

भा. चौ०—अ उ म त्रयवर्णसंयोगा । प्रकट भयो ओंकार प्रयोगा ॥
विष्णु विराट अग्नि अकारा । हेमगर्भ शिवतेज उकारा ॥
ईश्वर प्राज्ञ प्रकृतिमय जानो । ओंकारकर भेद बखानो ॥
अर्थविचार जपइ जो कोई । ईश प्रकट ताके जिय होई ॥

अर्थ—अ उ म इन तीन अक्षरोंके संयोगसे ॐ शब्द बना है अकारसे विष्णु विराट और अग्निका ग्रहण है, उकारसे हिरण्यगर्भ शिव और तैजस और मकारसे ईश्वर कृति और प्राज्ञ जानना चाहिये सो इस अर्थकी भावना करता हुआ जप करनसे उसके हृदयमें ईश्वर प्रकट हो जाता है ॥ २८ ॥

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ २९ ॥

दो०—ईश्वरके प्रणिधानतें, होत आतमा भान ।
आन्तरीय सब विघ्नको, तब अभाव पहिचान ॥

अर्थ—ईश्वरके ध्यानसे आत्माका दर्शन होता है तब संपूर्ण अंतरके विघ्नोंका अभाव हो जाता है ॥

भाष्य दो०—चेतनको जब होत है, साक्षात्कार अनंत ।
विघ्ननाश और क्लेशहत, होत महा निश्चिंत ॥

अर्थ—जब चेतन आत्माका प्रकाश होता है तब सब विघ्न और क्लेशोंका नाश होनेसे महानिश्चिंत हो जाता है फिर कुछभी चिन्ता नहीं रहती ॥ २९ ॥

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याऽविरतिभ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

दो०—चितविक्षेपक नव कहे, विघ्न महाअघरूप ।
योगविघ्नहु जानिये, ते डारत भवकूप ॥
व्याधि स्त्यान अरु संशय, और प्रमाद आलस्य ।
अविरति भ्रांति अरु दर्शन, अलब्धभूमिको पस्य ॥
अनवस्थित नव जानिये, विघ्न महाबलवानु ॥
इनते छूटहि हरिकृपा, योगउदय जिमि भानु ।

अर्थ—चित्तके विक्षेप करनेवाले नौ विघ्न महापापरूप हैं वेही योगमेंभी विघ्न डालनेवाले हैं अपने प्रभावसे संसृतिसे रहित नहीं होने देते हैं भवसागरमें डाल देते हैं इनके नाम आगे लिखे जाते हैं व्याधि १, स्त्यान २, संशय ३, प्रमाद ४, आलस्य ५, अविरति ६, भ्रांतिदर्शन ७, अलब्धभूमिकत्व ८, अनवस्थितत्व ९, ये नव विघ्न महाबलवान् हैं इनसे योगी ईश्वरकी कृपाहीसे छूटता है तब योग पूर्ण होता है ॥

भा. छंद—वात पित्त कफ धान्यरसं । विषयेन्द्रिय मानहु व्याधिवसं ॥
मन चाहत कर्म समर्थ नहीं । तिहि स्त्यान कहत मुनिव्यास सही ॥
संशय भ्रमत्यागन योग सदा । योगांगनप्रीत करै प्रमदा ॥
गरुताकर तन मन करै वसं । तब जानहु आलस त्रास वसं ॥
विषयारस विरति विलासवसं । मन भ्रांति भये अन्यान्यलसं ॥
नहिं भूमि समाधि हुलासअसं । अनवस्थित चित नव विघ्न यसं ॥
वर्णन किये विघ्न सबै दुखदा । ते करन उपद्रव मोक्ष विदा ॥
सो जरत जन्म मरण विपती । तिहिं ज्ञान कृपाण कराहि निवृती ॥

अर्थ—वात, पित, कफ, अन्नादिके रससे तथा विहारादिसे इन्द्रियोंकी विषमताद्वारा किसी व्याधिकी उत्पत्ति हो जानेको व्याधि कहते हैं और जिस कर्मके करनेको मन तो चाहे परंतु उसके करनेकी सामर्थ्यका न होना स्त्यान कहाता है । जिसकी सत्यता वा असत्यतामें भ्रम हो उस भ्रमके होनेको संशय और योगके अंगोंमें प्रीतिका न होना प्रमाद, शरीर और चित्तकी गरुताईसे चित्तको आरामी होजानेसे आलस होता है, विषयोंके रसके विलासमें प्रीति होनेका नाम विरति है, यथार्थरूपका ज्ञान न होकर औरका औरही प्रतीत होना भ्रांतिदर्शन, समाधिमें चित्तका न लगन समाधि भूमि और समाधिमें चित्त लगकर स्थिर न रहनेका नाम अनवस्थितत्व है,

ये नव विघ्न दुःखके देनेवाले मोक्षमार्गमें उपद्रव करके मोक्ष नहीं होने देते और जन्ममरणरूप विपत्तिमेंही डाले रखते हैं इन नवों विघ्नोंको ज्ञानके खड्गसे काटकर निवृत्त करना चाहिये ॥ ३० ॥

दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

दो०–दुख दुर्मन और अङ्गजय, श्वास और प्रश्वास ।
सहकारी विक्षेपके, सङ्गहि करत प्रकाश ॥

अर्थ–दुःख वैर अंगोंका कंप श्वास प्रश्वास ये सबभी व्याधि आदिकके सहकारी अर्थात् उपद्रवरूप हैं ॥

भाष्य दो०–दुख दुर्मन और अङ्गजय, श्वास और प्रश्वास ।
साथ रहत विक्षेपके, कहहिं चित्तमें वास ॥

चौ०–शारीरिक दुख व्याधि कहावत । कामादिक मानस बतरावत ॥
व्याघ्र आदिते उत्पति भौतिक । ग्रहपीडादुख जानो दैविक ॥
इच्छा पूरण जब नाहिं होई । दौर्मनस्य तुम जानहु सोई ॥
इच्छाविना जो कंपत अंगा । अंगमेजय तिहिं नाम अभंगा ॥

दो०–पूरक रेचकके विना, श्वासा आवत जात ।
श्वास और प्रश्वास दोउ, विघ्नमाहिं समात ॥

अर्थ–दुःख, दुर्मन, और अंगमेजय, श्वास, प्रश्वास ये सब विक्षेपों अर्थात् विघ्नोंके साथ रहते हैं क्योंकि ये सब विघ्नोंके अंतरमेंही समाये हुए और चित्तमें वास करते हैं । शारीरिक दुःख व्याधि कहाता है और कामादिकको मानसिक कहते हैं । दोनोंके इन्हीं अध्यात्मिकभी कहते हैं व्याघ्र आदिकसे उत्पन्न भये दुःखका नाम भौतिक और ग्रहपीडाका नाम दैविक दुःख है जब इच्छा पूर्ण नहीं होती तब द्वेष अर्थात् दौर्मनस्य होता है विना इच्छाके अंगोंका कापना अंगमेजय और विना पूरक रेचकके श्वासका आवागम श्वास प्रश्वास कहाता है ये सब विक्षेप अर्थात् नवों विघ्नोंके अंतरमें समाये हुए रहते हैं ॥ ३१ ॥

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

दो०-तिनके प्रतिषेधन निमित, एकत तत्व अभ्यास ।
ईश्वर एक उपासना, करत विघ्न सब नाश ॥

अर्थ-तिन विघ्नोंके नाशके निमित्त एकतत्व जो ईश्वर है उसकी उपासना और ध्यान करनेसे संपूर्ण विघ्नोंका नाश हो जाता है ॥

भा. दो.-तत्प्रतिषेधन करन हित, एक ईशको ध्यान ।
नासत विघ्न विपति सब, लेहु सत्य जिय मान ॥
चित्त शुद्धिकर हेतु सब, और एकाग्र विधान ।
उत्तर सूत्र मुनिवर कहत, कर देखहु अनुमान ॥

अर्थ-तिन विघ्नोंके दूर करनेके हित एक ईश्वरका ध्यान करनेसे संपूर्ण विघ्नोंकी विपत्तियोंका नाश हो जाता है यह सत्य मानना चाहिये अब चित्तकी शुद्धिके कारण चित्तकी एकाग्रताका उपाय आगेके सूत्रस महर्षि कहते हैं अनुमान द्वारा जान सक्ते हैं कि यह उपाय चित्तकी शुद्धि और चित्तकी एकाग्रताका परम कारण है ॥ ३२ ॥

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य-
विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

ो०-सुखिपनते मैत्री करहि, दुखिपन करुणा मूर ।
पुण्यात्माते हर्ष अरु, अघ उदास भरिपूर ॥
इहि प्रकार साधन करे, चित्त लहत आनन्द ।
सब जगसों हिलमिल रहै, पावत परमानन्द ॥

अर्थ-सुखी पुरुषोंसे मित्रता और दुखियोंपर बहुतही दया, पुण्यात्माओंसे हर्ष पापियोंसे उदासीन, उदासीनका यह अर्थ है कि न तो प्रीति हो और न द्वेष हो समभावसे वर्ताव करनेका नाम उदासीन है इस प्रकारके साधन करनेसे चित्त प्रसन्न रहता है इससे संपूर्ण संसारसे हिलमिलके रहनेसे परमानन्द प्राप्त होता है ॥

भा. दो.-सुखियनते मैत्री करत, ईर्षा मल जरजांय ।
दुखियनपर करुणा करे, सब अपकार विहाय ॥

धर्मिनते हर्षित रहे, होत असूया ध्वंस ।
उदासीन पापी विषें, करत क्रोधकर भ्रंस ॥

चौ०—इहि प्रकार रजतमकी करणी । होत निवृत्ति पाँव सतसरणी ॥
शुद्धि सतोगुणकर चित वासा । होइ प्रसन्न मन योग प्रकाशा ॥
होत प्रकाश मिटहि अज्ञानू । तिमिर नाश जिमि प्रकटत भानू ॥
होत प्रकाश भेद भ्रमनाशा । सत्य पदारथ करत प्रकाशा ॥

अर्थ—इस प्रकार साधन करनेसे रजोगुणतमोगुणकृत रागद्वेषादिका नाश होकर चित्त सतोगुणी कृत्योंमें लवलीन होता है सतोगुणके प्रकाशसे चित्तकी प्रसन्नता और योगका उदय होता है तिस प्रकाशसे अज्ञान ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे सूर्यके प्रकाशसे अंधकार नाश होता है अज्ञानके नाश और ज्ञानके प्रकाशसे संपूर्ण भेद और भ्रमका नाश होकर यथार्थ पदार्थ प्रकाशित होता है ॥ ३३ ॥

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

दो०—प्रछर्दन और विधारणा, प्राणवायुको जीत ।
चित स्थित और स्वस्थ कर, आनंद पावत मीत ॥

अर्थ—इस मैत्री आदि यत्नके सिवाय रेचक प्राणायाम अर्थात् भीतरसे वायुको नासापुटद्वारा निकालकर रोक लेनेका नाम विधारणा है सो रेचक करके प्राणवायुकी धारणा करनेसे चित्त स्थित और स्वस्थ होकर आनन्दको प्राप्त होता है ॥

भा. चौ.-प्रछर्दन और विधारणप्राण । कर अभ्यास चित्त विश्रामा ॥
प्राणवायु नासापुटद्वारा । रेचन नाम कहत निरधारा ॥
ताहीको बाहर अतिरुद्धा । कहत विधारण नाम विशुद्धा ॥
द्वितीय उपाय पतंजलि गायो । मन थिर कर सब भेद बतायो ॥

अर्थ—रेचक प्राणवायुको बाहर रोके रहनेका नाम विधारणा है सो विधारणाके अभ्याससे चित्तको विश्राम होता है प्राणवायुको नासाके छिद्रोंद्वारा बाहर निकालनेका नाम प्रछर्दन और उसीको बाहर रोके रहना भीतर न जाने देनेका नाम विधारणा है इस विधारणासे चित स्थिर हो जाता है ॥ ३४ ॥

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ३५॥

दो०—औरों कहत उपाय अब, विषयावती सुगंधि ॥
चितकी वृत्ति निवृत्ति कर, मनको राखत बंधि ॥

अर्थ—औरभी उपाय अब चित्तकी वृत्तियोंके निरोधका कहते हैं कि विषयवती प्रवृत्तिके उत्पन्न हो जानेसेभी चित्त स्थिर हो जाता है ॥

भा. चौ.—नासिकाग्र संयम जे करई । साक्षात् होत सुगंधी तबहीं ॥
जिह्वा अग्र मध्य और मूला । रसस्पर्श शब्द अनुकूला ॥
हुइ प्रसन्न संयम अभ्यासा । विषयवती जननी विश्वासा ॥
शास्त्र कथित अनुभव कर जोई । श्रद्धायुत चित स्थिर होई

अर्थ—नासिकाके अग्रभागमें संयम करनेसे सुगंधिका साक्षात् होता है जिह्वाके अग्रमें संयमसे रस, मध्यमें संयमसे स्पर्श, मूलमें संयमसे शब्दका साक्षात्कार होनेसे इसका नाम विषयवती प्रवृत्ति है । इससे जब सुगंधि आदिकका साक्षात्कार हो जाता है तब विश्वास हो जाता है कि सूक्ष्म पदार्थमेंभी संयम किया जावेगा तो उसकाभी साक्षात् हो सक्ता है इस विश्वाससे अत्यंत सूक्ष्म जो ईश्वर है उसमें मनको जोडकर साक्षात् करानेसे यहभी चित्तकी स्थिति करनेवाली है अथवा शास्त्रमें कहे हुए किसी अनुभवसेभी योगीकी प्रवृति ईश्वरमें होती है और ईश्वरका साक्षात् होनेसे मोक्ष होती है इसीसे विषयवती प्रवृत्तिभी मोक्षका एक उपाय है ॥ ३५ ॥

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

दो०—विशोका वा ज्योतिष्मती, चित्त स्थिरकर मूल ।
दुखहर करत प्रकाश अरु, संवित प्रवृति अभूल ॥

अर्थ—विशोका और ज्योतिष्मती यह दोनों रूप संवित्‌के हैं विशोकासे दुःखोंका नाश होकर शोकरहित होता है जोतिष्मतीसे प्रकाशकी प्राप्ति होती है ॥

भाष्य दो०—हृदय मध्य जो कमळ है, ताहि अधोमुख जान ।
रेचकतें कर ऊर्धमुख, सुषमन संयम मान ॥
मनकर संवित होत है, जस स्वरूप कर ध्यान ।
सूर्यचंद्र उडुगणनकी, ज्योति परत पहिचान ॥

चौ०-ताके भेद युग्म कर जानो। ज्योतिष्मती विशोका मानो॥
ज्योतिष्मती प्रकाशक मानो। दुखहर नाम विशोका जानो॥
ज्योतिष्मती विशोका संगा। मन स्थिर कर हेतु अभंगा॥
ताते उपजत अचल समाधा। साधक सुखद मोक्ष कर साधा॥

अर्थ-हृदयके बीचमें जो अधोमुख कमल है उसे रेचक वायुसे ऊर्ध्वमुख करके सुषुम्नानाडीमें संयम करनेसे मनमें संवित् अर्थात् एक प्रकारका प्रकाश उत्पन्न होता है उससे मनहीमें सूर्य चन्द्र और तारागणोंकी ज्योतिका प्रकाश होता है उस संवित्के दो भेद हैं जोतिष्मती और विशोका जोतिष्मतीसे प्रकाश विशोकासे सपूर्ण दुःखोंका नाश होता है यह ज्योतिष्मती और विशोका प्रवृत्ति जब मनमें भर जाती है तब मन स्थिर हो जाता है इसीसे ये दोनों मनकी स्थिरताका कारण है मनके स्थिर हो जानेसे समाधि अचल होती है इसका साधन साधकको मोक्षसुख देनेवाला है॥ ३६॥

वीतरागविषयं वा चित्तम्॥ ३७॥

दो०-अथवा रागविहीन चित, मन थिर करन उपाय।
रागसहित चित होत जब, कबहुँ न थिरता पांय॥

अर्थ-अथवा चित्तका रागरहित होनाभी चित्तकी स्थिरताका उपाय है रागसहित चित्त कभी स्थिर नहीं होता है॥

भा. चौ.-अथवा वीतराग शुक व्यासा। तिनको भाव चित्त परकासा॥
वीतराग चित जस वैरागा। तस वैराग रहत चित पागा॥
रागरहित चित सुखकर मूला। वीतजात सब संसृतिशूला॥
यावत सुख दुःख सकल सिराने। लहत मुक्ति ईश्वर पहिचाने॥

अर्थ-अथवा वीतराग जो शुकदेवजी व व्यासजी तिनका भाव जो वैराग है वह चित्तमें समाय जाय तब रागरहित चित्त होनेसे संपूर्ण जन्म मरण आदिक जो संसृतिके शूल हैं मिटकर ईश्वरके पहिचाननेसे मुक्तिसुखको पाता है॥ ३७॥

स्वप्ननिद्राज्ञानालंबनं वा॥ ३८॥

दो०-यथा स्वप्न निद्राविषै, आलम्बन चित होय।
मन थिरताकर विषय यह, मानहु दृढ कर सोय॥

अथ–जैसे निद्रामें स्वप्न विषयके आलंबन करनेसे चित्त स्थिर होता है और निद्रा अर्थात् सुषुप्ति अवस्था है उसमें जैसे सुखदुःखोंसे चित्त रहित हो जाता उसी प्रकारकी भावनाज्ञानको चित्तमें धारण करनेसे चित्त स्थिरताको प्राप्त होता है । इसीसे स्वप्नज्ञानका आलंबन और सुषुप्तिज्ञानका आलंबन करनेसे योगीके चित्तकी स्थिरता होनेको कहा गया है ॥

भाष्य दो०–जैसे स्वपनेमाहिं कोउ, मूर्ति मनोहर देख ।
तन्मय होइ चित चाहकर, तेज पदारथ पेख ॥
जैसे ज्ञान सुषुप्ति नाहिं, सुख दुख कवनेहुँ भांति ।
तैसे मन निश्चित कर, निद्रालंबन शांति ॥

अर्थ–जैसे स्वप्नमें किसी तेजवान् तथा मनोहर मूर्तिको देखकर चित्त तन्मय हो जाता है और सुषुप्तिमें दुःखसुखसे रहित होनेसे शांति पाता है इस प्रकारसे मनको निश्चित करनेसे चित्त स्थिर होता है ॥ ३८ ॥

यथाऽभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

दो०–अथवा अभिमत ध्यानते, मन निश्चलता होय ।
चित चाहे जिहि वस्तुको, तिहि ध्याये थिर होय ॥

अर्थ–अथवा अभिमत ध्यानसे मनकी निश्चलता होती है अभिमतध्यान अर्थात् जिसको चित्त चाहे उसका ध्यान करनेसे मन निश्चल हो जाता है ॥

भाष्य दो०–अथवा अभिमत ध्यानते, चित एकागर होय ।
जाको चित चाहे तिही, ध्याये थिरता सोय ॥

अर्थ–जिस वस्तुमें अधिक प्रीति होती है उसकी चित्तमें चाह होती है इसीका नाम अभिमत है उस अभिमत वस्तुके ध्यानसे चित्त चंचलतारहित स्थिर हो जाता है ॥ ३९ ॥

परमाणुपरमहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

दो०–पूरब उक्ति उपायते, चित्त स्थिर अस होइ ।
अति सूक्षम स्थूलको, सुगम लेत है जोइ ॥

अर्थ–पूर्व कहे भये उपायोंसे मन ऐसा स्थिर हो जाता है कि अतिसूक्ष्म परमाणुतक और स्थूलसे परम महान् जो विराट उसकाभी ज्ञान सुगमतासे प्राप्त कर लेता है ॥

भा. छंद०–सूक्ष्मते परमाणु यावत् स्थूल परम महत्वलों ।
अंत इनलों जानिये वशिकार संज्ञक चित्तलों ॥
सूक्ष्म और स्थूल दोनों कोटिमें चित नहिं रुके ।
कहुँ राग प्राप्ती होत नहिं बस भये पर वशिकारके ॥
वशिकारको फल जानिये परिपूर्ण चित स्थिर भयो ।
पुनि कर्म और अभ्यासकी कछु होत नहिं इच्छा कह्यो ॥
जब चित्त थिरता लहत तब पाव कैसे रूपको ।
कहत सो समुझाय अब सुनहु विषय अनूपको ॥

अर्थ–सूक्ष्मसे परमाणुतक और स्थूलसे परम महत्त्वतक ज्ञान होनेकी अवधि है जब चित्त वश हो जाता है तब यहांतक उसकी ज्ञानगति हो जाती है सूक्ष्म और स्थूल दोनों कोटिमें फिर चित्त किसी रागको पाकरभी नहीं रुकता है इस वशिकारका यही फल है कि इससे चित्त दृढ स्थिर हो जाता है फिर उसको कर्म और अभ्यास करनेकी आवश्यकता नहीं रहती जब चित्त स्थिरताको प्राप्त हो जाता है तब उसका कैसा रूप होता है इस अनुपम विषयको सूत्रकार आगे कहते हैं ॥ ४० ॥

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदंजनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

दो०–क्षीणवृत्तिकर चित्त जब, स्वच्छ होत मणिरूप ।
जिहिं उपाधि अनुरक्तचित, भासत तिहिं अनुरूप ॥
गृहीत ग्रहण और ग्राह्यमें, जहां चित स्थित होइ ।
तिहिं समान भासन लगत, समापत्ति कह सोइ ॥

अर्थ–जब चित्तकी वृत्तियोंका नाश हो जाता है तब चित्त स्वच्छमणिरूप प्रकाशित होता है फिर जिस उपाधिमें वह चित्त लग जाता है तब उसीके तुल्य प्रतीत होने लगता है ग्रहीता अर्थात् ग्रहण करनेवाला ग्रहण ग्रहण करना ग्राह्य वह पदार्थ

जो ग्रहण किया जाय इन तीनोंमें जहां चित्त स्थित हो जाता है उसीके समान चित्त प्रतीत होने लगता है वही समापत्ति कहाती है ॥

भा.चौ.–शुद्ध स्फटिकतुल्य चित ऐसो। जस संग मिलहि होत तब तैसो
रज तम वृत्तिहीन सतरूपा। ग्रहीतृ ग्राह्य और ग्रहणस्वरूपा॥
सूक्ष्म स्थूल ग्राह्य अनुमानो। और ग्रहीतृ कर्ता पहिचानो॥
ग्रहण करण इन्द्रियकहँ पायो। तदाकार होय रूप दिखायो॥
सूक्ष्ममें सूक्ष्म आभासै। स्थूलरूप स्थूल प्रकासै॥
इन्द्रियमें इन्द्रियकर रूपा। पुरुषमाहिं बस पुरुषस्वरूपा॥
समापत्तिकर रूपदिखायो। जैसो भाष्यकार समुझायो॥
साधनतें चित निर्मल होई। जस पदार्थ तस भासत सोई॥

दो०–जासु वस्तुमें शुद्ध चित, संयम करहि दृढाय।
तौन वस्तु ह्वै जात चित, संप्रज्ञात समाय॥

अर्थ–जब चित्त शुद्ध स्फटिक तथा मणिके तुल्य हो जाता है तब उसका जिसके साथ संयोग होता है उसीके तुल्य प्रतीत होने लगता है रजतमवृत्तियोंके रहित होनेसे चित्तके बल सतोगुणसे शुद्ध होता है तब उसको कर्ता करण और कर्मका ज्ञान नहीं रहता अर्थात् ध्याता ध्यान और ध्येय आदि किसीका बोध न होनेसे वह तन्मय अर्थात् तुल्यरूप हो जाता है यहां पुरुष कर्ता इंद्रियां करण अर्थात् ग्रहण और सूक्ष्म और स्थूल पदार्थ ध्येय जानना चाहिये सो शुद्ध चित्त सूक्ष्ममें सूक्ष्म स्थूलमें स्थूल इन्द्रियोंमें इन्द्रियां पुरुषमें जाकर पुरुषरूप हो जाता है जैसा कि समापत्तिका रूप भाष्यकारने कहा है, कहे गये साधनद्वारा चित्त ऐसा निर्मल हो जाता है कि जैसे पदार्थको देखे उसका वैसाही स्वरूप हो जाता है अर्थात् जैसे दर्पणके सामने जो वस्तु आ जावेगी उस वस्तुका यथार्थ प्रतिबिम्ब दर्पणमें पडनेसे दर्पण उसके रूपके तुल्य रूपवाला हो जाता है तैसेही मणिके समान शुद्ध चित्तके सामने जो पदार्थ आ जावे चित्त उसीके तुल्य भासित हो जाता है॥

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः॥ ४२ ॥

सो०–शब्द अर्थ अरु ज्ञान, पृथक् पृथक् तीनों अहैं।
सम्मीलित त्रय जान, सवितर्का समापत्तिमें॥

अर्थ-शब्द अर्थ और ज्ञान ये तीनों जुदे जुदे हैं जब शब्द अर्थ और ज्ञान तीनों मिल जाते हैं तब सवितर्का समापत्ति कहाती है ॥

भाष्य दो०-याहीते मुनिराजने, समापत्ति ठहराय।
सवितर्का समापत्तिको, गावत व्यास दृढाय ॥

चौ०-समापत्ति सवितर्का भेदा। शब्द अर्थ अरु ज्ञान असेदा ॥
धेनुशब्दसंज्ञाक्षर जानो। वाचक शब्द अर्थ अनुमानो ॥
शब्द अर्थ अरु ज्ञान यथारथ। नाम ज्ञानतें जान पदारथ॥
योगिनकहँ समाधिके माही। शब्द और अर्थ ज्ञान प्रकटाई॥

दो०-योगीको अभ्यासवश, होत पृथक् सब ज्ञान।
शब्द अर्थ अरु ज्ञानसों, संकीर्णा अनुमांन ॥

अर्थ-इससे मुनिराज पातंजलिने इसका नाम समापत्ति कहा है और श्रीमहर्षि-व्यासजीने इसको दृढपूर्वक समझाया है जैसे धेनु शब्द है यह धेनुशब्द गौ अर्थात् गायवाचक होनेसे धेनुशब्दका अर्थ गो है और शब्द अर्थ दोनोंके बोधको ज्ञान कहते हैं सो जिसमें यह तीनों मिले हुए हों वह सवितर्क समापत्ति कहाती है। यद्यपि विकल्पसे यह तीन है तथापि विना विभागके इससे १ गोमात्रका ग्रहण होता है परंतु जिस समाधिमें इन तीनोंका पृथक् २ बोध हो उसको संकीर्णा अर्थात् शब्द अर्थ ज्ञान इन तीनोंका संयुत ज्ञान होता है अर्थात् ये तीनों अलग २ भासित होते हैं इसीको सवितर्का समापत्ति कहते हैं ॥ ४२ ॥

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्ये वाऽर्थमात्रनि-
र्भासा निर्वितर्का ॥ ४३ ॥

दो०-स्मृतिकी परिशुद्धितें, रहत नहीं कछु याद।
नहिं जानत निज रूपसो, भासत अथ अवाद ॥
निर्वितर्कको पायकर, केवल भासत ध्येय।
ध्याता ध्यान न भास कछु, होत स्मृती हेय ॥

अर्थ-स्मृतिके परिशुद्धि हो जानसे अर्थात् याददास्त न रहनेसे अपने रूपकोभी नहीं जानता केवल उसको अर्थमात्र अर्थात् पदार्थमात्र भासित होता है

इसका यह अभिप्राय है कि वह यहभी नहीं जानता है कि मैं कौन हूं और क्या करता हूं ध्याता और ध्यानकाभी ज्ञान न होनेसे उसका चित्त ध्येयाकार ही जाता है इसीको निर्वितर्का समापत्ति कहते हैं ॥

भा. चौ.-स्मृतिको परिशुद्ध स्वरूपा। शून्य समान अर्थ अनुरूपा ॥
तातें व्यास कहत निर्वितर्का। भगिनी समापत्ति सवितर्का ॥
स्मृतिरहित ज्ञान जब होई। ध्येयस्वरूप होत चित सोई ॥
शब्द अरु अर्थ कछू नाहिं भासे। केवल ज्ञान ध्येय परकाशे ॥

दो०-ध्याताको नहिं रहत जब, किंचित अपनो ध्यान।
मैं ध्याता हुइ ध्येयको, धारत हों चित ध्यान ॥

अर्थ-जब स्मृति परिशुद्ध होती है तब अर्थमात्रस्वरूपसे शून्य भासित होता है अर्थात् जब स्मृति याददास्तसे रहित होता है तब उस योगीका चित्त ध्येयाकार हो जाता है उसको शब्द अर्थ आदिका कुछ बोध नहीं होता केवल वह ध्येयाकार हो जाता है यहभी ज्ञान नहीं रहता कि मैं ध्याता हूं और किसका ध्यान करता हूं सो स्मृतिके रहित होनेसे चित्तका ध्येयाकार हो जानेको निर्वितर्का समापत्ति कहते हैं यह स्थूल समापत्ति कहाती है ॥ ४३ ॥

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥

दो०-सवितर्का निर्वितर्कसम, सविचार निर्विचार।
स्थूला पहिली जानिये, पिछली सूक्ष्म सम्हार ॥
पंचभूत परमाणु अरु, देश काल गंधादि।
भान होत सविचारमें, सूक्ष्म विषय अनादि ॥
निर्विचार भासत रहै, शून्य अर्थ अनुरूप।
सब विकल्पकर रहित जो, भासहि सूक्ष्म स्वरूप ॥

अर्थ-सवितर्क निर्वितर्कके समानही सविचार और निर्विचार दो समापत्ति और होती हैं। पहली दोनों सवितर्क व निर्वितर्क स्थूल समापत्ति है और सविचारा निर्विचारा सूक्ष्मविषयक जानना चाहिये। सविचारा समापत्तिमें पंचभूत पृथिवी जल तेज वायु आकाश और पांचों तन्मात्रा शब्द स्पर्श रूप रस गंध देश काल सूक्ष्म विषयों-

का ज्ञान होता है । निर्विचार समापत्तिमें अर्थमात्र शून्य स्वरूपका भान होता है सर्व विकल्पोंसे रहित होनेसे अर्थमात्र भासित नहीं होता शून्य स्वरूपका ज्ञान होता है इसीसे निर्विचार समापत्ति कहाती है ॥

भा. चौ.-स्थूलासमापत्ति यह जानो । अब हम सूक्ष्म कहत अनुमानो ॥
याहीके समान सविचारा । दूजी नाम जान निर्विचारा ॥
पंचभूतको सूक्ष्म स्वरूपा । देश काल संयुक्त अनूपा ॥
परमाणू गंधादिक मात्रा । भान होत सविचार सुयात्रा ॥

दो०-निर्विचारमें भासहहि, शून्य अर्थ अनुरूप ।
सब विकलपको छांडकर, भासत सूक्ष्म स्वरूप ॥

अर्थ-पूर्व कथित सवितर्का आदि जो समापत्ति कही गई हैं ये स्थूला है अब सूक्ष्म समापत्तिका वर्णन किया जाता है इन्ही स्थूला समापत्तिके समान सविचारा निर्विचारा सूक्ष्मसमापत्ति है सविचारा समापत्तिमें पृथिवी आदिक पंचभूत वा शब्दादिक पंचतन्मात्रा और देशकालका ज्ञान होता है और निर्विचारमें अर्थमात्रका शून्य स्वरूप भासित होता है ॥ ४४ ॥

सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्य्यवसानम् ॥ ४५ ॥

दो०-सूक्ष्म विषयकी अवधिगत, जानहु प्रकृतिपर्यंत ।
प्रकृति अलिंगसमान अरु, सूक्ष्म विषयकर अंत ॥

अर्थ-सूक्ष्मविषयकी गतिकी अवधि प्रकृतितक जाननी चाहिये प्रकृति अलिंगरूप है और सूक्ष्म विषयोंकी अवधि अर्थात् हद है ॥ ४५ ॥

ता एव सबीजा समाधिः ॥ ४६ ॥

दो०-समापत्ति जो पूर्वमें, कथन करीं हम चार ।
सोई सबीज समाधि है, जानहु सत्यविचार ॥

अर्थ-जो पूर्वमें चार समापत्ति कही गई हैं उन्हीका नाम सबीज समाधि जानना चाहिये ॥

भा. चौ०—तिहिंको जान सबीज समाधा।अष्ट रूप इनके मुनि साधा॥
सवितर्क निवितर्क विचारा । निर्विचार चहु रूप पसारा ॥
सानंदाअसानंद असास्मिता । अष्टम जानहु रूप अस्मिता॥
आठों भेद सबीज समाधा । निर्विचार अब सुनहु अबाधा॥

अर्थ—इन्हींका नाम सबीज समाधि है इसके आठ रूप मुनियोंने कहे हैं सवितर्क १, निर्वितर्क २, सविचार ३, निर्विचार ४, सानंदा ५, असानंदा ६, असास्मिता ७ और सास्मिता ८ ये आठ भेद सबीज समाधिके जानने चाहिये अब निर्विचार समापत्तिको कहते हैं ॥ ४६ ॥

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

दो०—निर्विचार समाधिमें, जबहि विशारद होय ।
अधिआत्मा परिसाद और, निखिलज्ञानयुत सोय ॥

अर्थ—जब निर्विचार समाधिमें प्रवीण हो जाता है तब आत्मा प्रसन्न होता है और संपूर्ण स्थूल सूक्ष्म पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है ॥

भा. चौ.-निर्विचार जब होत प्रकट अस । तव उद्योत अध्यात्मकेर रस॥
रज तम मल मिट जात यथारथ। होत ज्ञान वैराग्य पदारथ ॥
तिहि प्रभाव अध्यात्म प्रसादा । मिटत सकल रज तम सप्रमादा ॥
शुद्धि बुद्धि रविसरिस प्रकाशा । गुप्त प्रकट जस तस सब भासा ॥

अर्थ—जब निर्विचारा प्रकट होती है तब आत्मामें प्रकाश होता है रजोगुण तमोगुणके मल दूर हो जानेसे यथार्थ वैराग्य और यथार्थ वैराग्यके होनेसे आत्मा प्रसन्न होता है और बुद्धिका सूर्यके तुल्य प्रकाश होता है तब योगीको गुप्त प्रकट जहां जो वस्तु हो सबका सात्क्षाकार होने लगता है ॥ ४७ ॥

ऋतंभरेति तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

दो०—अध्यात्मा परसादते, बुद्धी होत अनूप ।
ऋतंभरा प्रज्ञा सोई, शुद्धिबुद्धि अनुरूप ॥

अर्थ-आत्माके प्रसन्न होनेसे बुद्धि अत्यंत निर्मल हो जाती है उसीका नाम ऋतंभरा प्रज्ञा जानना चाहिये ॥

भा. दो०-ऋतंभरा प्रज्ञा विषें, सत्यज्ञान परतीत ।
श्रवण और अनुमानते, पृथक् कहावत मीत ॥

अर्थ-ऋतंभराप्रज्ञासे सत्यज्ञान होता है यह श्रुतप्रज्ञा और अनुमानप्रज्ञासे पृथक् है ॥ ४८ ॥

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषयाविशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

दो०-श्रवण और अनुमानते, ऋतंभरा अति भिन्न ।
प्रज्ञा अर्थ विशेषके, करत विदित सब चिह्न ॥

अर्थ-श्रुतप्रज्ञा और अनुमानप्रज्ञासे ऋतंभरा प्रज्ञा अति भिन्न है श्रुतप्रज्ञा आदिसे अर्थमात्रका ज्ञान होता है और अनुमानप्रज्ञासे अनुमान किया जाता है इसलिये अनुमानज्ञानभी श्रुतप्रज्ञाके समान होनेसे ये दोनों सामान्य हैं और ऋतंभरा प्रज्ञा इनसे अधिक है क्योंकि उससे सत्य भ्रमरहित ज्ञान होता है ॥

भा. चौ०-श्रुतप्रज्ञा वेदनकर ज्ञाना । प्रज्ञा अनुमान ज्ञान अनुमाना॥
इन दोउनतें पृथक कहावत । ऋतंभरा प्रज्ञा अस गावत ॥
श्रुत अनुमान ज्ञान जो होई । सो सामान्य कहत सब कोई॥
ऋतंभरा निर्भ्रम चित होई । सत्यज्ञान आकर है सोई ॥

दो०-वेद और अनुमानते, ज्ञान होत सामान ।
ऋतंभरातें होत है, सत्यपदारथ ज्ञान ॥

अर्थ-श्रुतप्रज्ञा वेदोंके ज्ञानका नाम है और अनुमानप्रज्ञा अनुमानज्ञानका नाम है ऋतंभराप्रज्ञा इन दोनोंसे पृथक् ज्ञानभी चाहिये श्रुतप्रज्ञा और अनुमानप्रज्ञासे सामान्य ज्ञान होता है और ऋतंभराप्रज्ञासे भ्रमरहित सत्य ज्ञान होनेसे ऋतंभरा-प्रज्ञा इन दोनोंसे विशेष होनेके कारण पृथक् जाननी चाहिये ॥ ४९ ॥

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबंधी ॥ ५० ॥

दो०-ऋतंभराते होत जो, संस्कार अति शुद्ध ।
प्रतिबंधक है अन्यको, जे संस्कार अशुद्ध ॥

अर्थ-ऋतंभरा प्रज्ञासे सब संस्कार शुद्ध हो जाते हैं और फिर अशुद्ध संस्कार उत्पन्न नहीं होने देती है इससे अशुद्ध संस्कारोंकी प्रतिबंधक है ॥

भा. दो०-ऋतंभराते उपज जो, संस्कार अतिशुद्ध।
रोकत दुख संस्कार सब, डारत जो न अशुद्ध ॥

अर्थ-ऋतंभरा प्रज्ञासे अत्यंत शुद्ध संस्कार उत्पन्न होते रहते हैं और दुखदाई अशुद्ध संस्कारोंका निरोध हो जाता है फिर दुखदाई अशुद्ध संस्कारोंका चित्तमें उदय नहीं होता है ॥ ५० ॥

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ ५१ ॥

दो०-ऋतंभरा संस्कारहू, जब निरोधको साधि।
सब निरोधतें होत है, तब निर्बीज समाधि ॥
पुनि निर्बीज समाधिते, जीवनमुक्ती होत।
नाशत दुख उत्कर्ष सब, सुख स्वरूप लह जोत ॥

अर्थ-जब ऋतंभरा प्रज्ञाकाभी निरोध हो जाता है तब निर्बीज समाधि जाननी चाहिये तिस निर्बीज समाधिसे जीवन्मुक्त होता है तब दुःख सब नाश होकर सुख-स्वरूप ज्योतिको पाता है ॥

भा. दो०-ऋतंभराके रुकतही, पावै सर्व निरोध।
उपजत है निर्बीज तब, पावत मोक्ष प्रबोध ॥
निजस्वरूपमें आपही, रहत मगन अतिहर्ष।
पूरण सुखको लहत सो, नासत दुख उत्कर्ष ॥
मुनिवरचरणसरोजकी, कृपाकटाक्ष प्रभाव।
रामबकस पूरण कियो, पादसमाधि सुभाव ॥

अर्थ-ऋतंभराक रुकतेही सर्व निरोध हो जाता है सर्व निरोध होनेसे निर्बीज समाधि कही जाती है इस निर्बीज समाधिके द्वारा योगी मोक्षको पाता है जब निर्बी-ज समाधि दृढ हो जाती है तब वह योगी अपने स्वरूपमेंही अत्यंत आनंदको पाकर मग्न रहता है और उसके सर्व दुख उत्कर्ष नष्ट होकर पूर्ण सुख जो जीव-

न्मोक्ष है उसे प्राप्त कर लेता है। श्रीमन्महर्षिपातंजलिके चरणकमलकी कृपासे मुझ रामबकससे यह समाधिपादका सुन्दर भाव पूर्ण किया गया है ॥ ५१ ॥

इति श्रीपातञ्जलियोगशास्त्रभाषाभाष्ये श्रीमत्पंडितगुरुदयालस्यात्मजपंडित-रामबक्सविरचिते समाधिपादः प्रथमः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ साधनपादप्रारंभः ।

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥

दो०—श्रीमत्पातञ्जलिचरण, शीस नाय कर जोरि ।
भाषाबंध सुछन्द कर, साधनपाद बहोरि ॥
क्रियायोगके रूप अब, जानहु तीनि अनूप ।
तप स्वाध्याय और ईशको, दृढ प्रणिधानस्वरूप ॥

अर्थ—क्रियायोगके तीन रूप हैं १ तप, २ स्वाध्याय, ३ ईश्वरप्रणिधान ॥

भा. चौ.-तप स्वाध्याय ईशप्रणिधाना। क्रियायोग शुचि करत बखाना॥
सत्य वचन मित भोजन देवा। गुरुकुल ब्रह्मचर्य्य कर सेवा॥
आश्रमधर्म नियम कर साधन। सहत कलेश होत अतिपावन॥
मोक्षशास्त्र और जप ओंकारा। कर स्वाध्याय होत भव पारा॥

दो०—फलकी इच्छा छांडकर, जो कछु कर शुभ कर्म ।
ईश्वरमें अर्पण करहि, सो प्रणिधान अभर्म ॥
क्रियायोगको अर्थ जिमि, सो अब करत बखान ।
प्राप्ती करहि समाधिकी, नाशत क्लेश महान ॥

अर्थ—तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, तीन प्रकारका क्रियायोग होता है सत्य बोलना, मित भोजन करना, देवता गुरु तथा गुरुकुलकी सेवा करना, ब्रह्मचर्य्यका साधन करना, आश्रमोंके धर्मोंको नियमानुकूल साधन करनेसे कष्टोंको सहारना पवित्र तप कहाता है। मोक्षशास्त्र और ॐकारका जप स्वाध्याय प्राणीको भवसागरसे

पार कर देता है। जो जो शुभ कर्म करे उनके फलकी इच्छा न करके ईश्वरमें अर्पण करे और भ्रमरहित होकर ईश्वरका ध्यान करनेका नाम ईश्वरप्रणिधान है अब क्रियायोगके प्रयोजनको कहते हैं जिससे क्लेशोंका नाश होकर समाधिकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

दो०—क्रियायोग पूरण भये, सिद्धी होत समाधि ।
क्लेशहु सूक्षम होत सब, सहज मिटत जगव्याधि ॥

अर्थ—क्रियायोगके पूर्ण हो जानेसे समाधिसिद्धि होती है और संपूर्ण क्लेशभी सूक्ष्म हो जाते हैं क्लेशोंके सूक्ष्म होजानेसे सांसारिक व्याधियोंसे छूट जाता है ॥२॥

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः ॥ ३ ॥

दो०—अविद्यास्मिता राग अरु, द्वेष महा बलवान ।
अभिनिवेश मिल पांचहूं, क्लेश सकल दुखखान ॥

अर्थ—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश यह पांचों क्लेश महादुःखकी खान है ॥

भा. चौ.-अविद्यास्मिता राग अरु द्वेषा । अभिनिवेश यह पंच कलेषा ॥
यह सब कर्मबंध दृढ करहीं । अरु परिणाम पाप चित चरहीं ॥
जाति आयु और भोगनिरूपा । ये त्रय कर्म विपाक स्वरूपा ॥
तिनमें दुखप्रद मूल अविद्या । नाश होत पावहि सतविद्या ॥

अर्थ—अविद्या १, अस्मिता २, राग ३, द्वेष ४, अभिनिवेश ५ यह पांच क्लेश कर्मबंधनोंको दृढ करके चित्तमें परिणामोंको स्थापन कर विचरते हैं। जाति, आयु और भोग ये तीनों कर्मके विपाक अर्थात् फल हैं इन पांचों क्लेशोंमें दुखदाई सब क्लेशोंकी मूल अविद्या है इसका नाश हो जानेसे सद्विद्या प्राप्त होती है जो मोक्षका कारण है ॥ ३ ॥

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

दो०—एक अविद्या छांडिकर, अस्मितादि जो चार ।
तिनके भेद प्रसुप्ततनु, और विछिन्न उदार ॥

सो०-सब क्लेशनकी मूल, एक अविद्या जानिये ।
उपजावत सब शूल, क्षेत्रनुरूप स्वरूप धरि ॥

अर्थ-एक अविद्याको छोडकर अस्मितादि जो चार क्लेश हैं उनके प्रसुप्त तनु विच्छिन्न और उदार चार भेद हैं अविद्या सब क्लेशोंकी मूल है जैसे क्षेत्रमें बीज पडनेसे नाना वस्तु उत्पन्न हो जाती हैं उसी प्रकार अविद्या क्षेत्ररूप होकर संपूर्ण क्लेशोंको उत्पन्न करती है ॥

भा० दो०-अविद्याके उत्तर रहत, अस्मितादि जे चार ।
तिनकी उत्पति भूमि है, अरु कारण निरधार ॥
अस्मितादि प्रत्येकके, भेद कहे जो चार ।
कर विचार प्रसुप्त और, तनु विछिन्न उदार ॥

छंद०-योगीश रहित विवेकते लय होत प्रकृती माहिं सों ।
शयन सम रह क्लेश तिनके नसत बीज न योगसों ॥
विना ब्रह्मज्ञानके अंकुरित समयो पायके ।
तप होत इन्द्रिय अर्ध सब जैसे सुषुप्ती आयके ॥
ज्ञानशक्ती जोनसो चैतन्य स्थित रहत है ।
जगे पर सब इन्द्रियनके विषय रसको गहत है ॥
प्रकृतिलय योगीनके सब क्लेश चितमें सुप्त हैं ।
समयको सो पाय प्रकटत होत जो चित गुप्त है ॥
करत साधन दृढ क्रियाके क्लेश तनु हुइ जात सब ।
सर्वथा नाहिं नाश तिहिं अंकुरित समयो पाय तब ॥

दो०-विषयी पुरुषनकेर दुख, होत विछिन्न उदार ।
राग होत जिहि कालमें, क्रोध क्षीण निरधार ॥
जोन समयमें क्रोधको, होत उदारस्वरूप ।
राग क्षीण हुइ जात सब, समय समय अनुरूप ॥

अर्थ-जो योगी विवेकसे रहित होकर प्रकृतिमें लय होते हैं उनके क्लेशोंका बीज नाश नहीं होता उनके क्लेश सोये हुएके समान रहते हैं विना ब्रह्मज्ञानके जब समय

पाते हैं तभी उदय हो जाते हैं जैसे सुषुप्तिअवस्थामें इन्द्रिय और अर्थ सबका लय हो जाता है और जागने पर सब इन्द्रियां अपने २ विषयरसको ग्रहण करने लग जाती हैं इसी प्रकारसे प्रकृतिमें लय हुए योगियोंके चित्तमें सब क्लेश सोये हुएक तुल्य रहते हैं वे सर्व क्लेश समय पायके गुप्तभी प्रगट हो जाते हैं सो वे सब क्लेश क्रियायोगसे क्षीण हो जाते हैं परंतु सर्वथा उनका नाश नहीं होता जब समय पाते हैं प्रकट हो जाते हैं विषयी पुरुषोंके क्लेश विच्छिन्न और उदार होते हैं जिस समय राग उदार होता है क्रोध क्षीण हो जाता है और जिस समयमें क्रोधका उदार स्वरूप होता है राग क्षीण हो जाता है इसी प्रकार अपने २ समयके अनुसार क्षीण और उदार होते रहते हैं ॥

चौ.—जबहि क्रोध धर रूप उदारा । करत प्रीतिको छीण पसारा ॥
प्रीतिकालमें क्रोध न होई । क्रोधसमयमें प्रीति न सोई ॥
सांसारिक वस्तुनके मांही । प्रीति रागकृत जान तहांही ॥
तिनके माहि विकार और हानी । देख अंत दुख दाता मानी ॥
द्वेष वैरकर तिनके मांहीं । दुखद जान नहि प्रीति करांही ॥
इहि प्रकार चारोंके भेदा । जानहु अस्मितादि जे खेदा ॥
मुक्ति दशामें ज्ञान पायकर । नाशत क्लेश अविद्याके घर ॥
मुक्ति दशा सो इनतें न्यारी । जानहु परमानंद महतारी ॥

अर्थ—जब क्रोधका उदार रूप होता है तब प्रीति अर्थात् रागका क्षीण विच्छिन्न रूप होता है अर्थात् क्रोधसमयमें प्रीति नहीं होती है और प्रीतिकालमें क्रोध नहीं होता और न क्रोधसमयमें प्रीति होती है । सांसारिक जिस वस्तुमें राग सुख होता है उसीमें प्रीति होती है और जिसमें विकार और हानि तथा दुःख समझता है उसमें द्वेष बैर अर्थात् क्रोध होता है दुखदाई जाननेसे उनमें राग अर्थात् प्रीति नहीं होती मुक्तिदशामें ज्ञान होनेसे अविद्या अर्थात् अज्ञानकृत क्लेशोंका नाश हो जाता है सो यह मुक्तिदशा इनसे अलग है और परमानन्द अर्थात् मोक्षसुखकी उत्पन्न करनेवाली है यह अस्मितादिक चारोंके भेद वर्णन किये गये हैं ॥ ४ ॥

अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मख्या-
तिरविद्या ॥ ५ ॥

दो०-आनितमें नित मान है, और अशुचिमें शुचि जान।
दुःखहूमें सुख मानत, देह आत्मा ज्ञान॥
होत विपर्यय ज्ञान इमि, तबहि अविद्या आय।
करत रहत उत्पात नित, विन वैराग्य न जाय॥

अर्थ-आनित्यमें नित्य और अशुचिमें शुचि दुःखमें सुख और अनात्मा जो देह उसमें आत्मबुद्धिका होना अविद्याका लक्षण है जब ऐसा विपरीत ज्ञान होता है तब अविद्या प्रकट होकर उत्पात करती है यह अविद्या विना वैराग्यके नाश नहीं होती है॥

भा. दो०-प्रथम अविद्याके कहों, लक्षण पृथक् बखान।
अशुचि अनित्य अनात्मदुख, शुचि नितात्मसुखमान॥
इहि प्रकार जब होत है, बुद्धी परम विरुद्ध।
तबहि अविद्या जानिये, उपजी महा अशुद्ध॥

छं०-सूर्य्य आदि अनित्यको जो मान नित सेवन करैं।
तिमिहि नित सुख स्वर्गके सम जान साधन दुख गरैं॥
अस जान मुनिवर कहत इमि जे आनितमें नित ख्यात है।
विचार कर देखो महा अपवित्र सबको गात है॥
मल मूत्र और कफ रुधिरको ग्रह अशुचि भ्रणभंडार सो।
तिहि धोय जलसों बाह्य मल सब पूर्ण कर शृंगारसो॥
कामिनीको देखकर मन मान अंग सुढार यों।
कमलदल सम नयन बांके बोल कोकिलनारि ज्यों॥

दो०-जैसे त्रियको रूप लखि, पुरुष मोह वश होय।
तैसे तिरिया पुरुषके, रूप देख वश सोय॥

चो.-अशुचिमाहि शुचिख्यात कहावत। संसृतिके दुख सुखसम भावत॥
दुखमें सुख जानत है जोई। दुखमें सुःख कहावत सोई॥

तनको जो आत्मा कर मानत । अनआतमा आत्मा कर जानत ॥
अनआत्मा आत्माकर ख्याता । रूप अविद्याकर विख्याता ॥

दो०—कोउ ऐसो जिन जानियो, विद्याकेर अभाव ।
जो विद्या होती नहीं, तो किम ज्ञान प्रभाव ॥

अर्थ—प्रथम अविद्याके लक्षण वर्णन किये जाते हैं अशुचि, अनित्य, अनात्म, दुःख आदिमें शुचि नित्य आत्म सुख मानना अविद्याके लक्षण हैं जब बुद्धि इस प्रकार विरुद्ध हो जाती है तबही अविद्याका उदय जानना चाहिये जो सूर्य आदिक अनित्यको नित्य मानकर सेवन करते हैं और स्वर्गादि सुखको नित्य समझके उसके साधनसे कष्ट उठाते हैं इसीको महर्षि अनित्यमें नित्य ख्याति ऐसा कहते हैं और विचारके द्वारा देखा जाय तो सबका शरीर अपवित्र है क्योंकि कफ मूत्र रुधिरका घर और अशुद्धिताका भंडार है तिस अपवित्र शरीरके बाहरके मलोंको जलसे धोकर पूर्ण शृंगारको किये भये कामिनीको देखके उसके अंगोंकी सुघडता कमलरूपी नेत्र और कोकिलकी स्त्री कोकिलाकी वाणीके समान उसकी वाणीको सुन पवित्र जानकर मन मान लेता है सो जैसे स्त्रीके रूपको देखके पुरुष वश हो जाता है उसी प्रकार पुरुषको देखकर स्त्री मोहित हो जाती है यही अशुचिमें शुचिख्याति कहाती है इसी प्रकार संसृतिके दुःखोंको सुखके समान मानता है यह दुःखमें सुख माननेका नाम दुःखमें सुखख्याति है शरीरको आत्मा करके जाननाही अनआत्मामें आत्माका मानना है इसीको अनात्मामें आत्मख्याति जानना चाहिये ये सब अविद्याके रूप हैं इससे ऐसा नहीं जानना चाहिये कि विद्याका अभाव है सो यदि विद्या नहीं होती तो ज्ञानका भाव कैसे होता है ज्ञानका भाव होनेसे विद्याका होना स्पष्ट है ॥ ५ ॥

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

दो०—एक और दर्शन शक्तिको, एकभाव जब होय ।
तबहि अस्मिता जानिये, देत महादुख सोय ॥
एकशक्ती है पुरुषकी, दर्शन बुद्धी जोइ ।
एक आत्म जब होत दोउ, जान अस्मिता सोइ ॥

अर्थ—दृक्शक्ति और दर्शनशक्तिका एक भाव होजानेको अस्मिता कहते हैं यह

अस्मिता महादुखदाई जानना चाहिये दृक्शक्ति पुरुष है और दर्शनशक्ति बुद्धि है जब पुरुष और बुद्धि एकरूप हो जाते हैं उसे अस्मिताक्लेश कहते हैं ॥

भा. छंद-पुरुष है दृगशक्ति दर्शन शक्ति बुद्धी लखत जे ।
नित्य अत्मा सुखी बंधनरहित पाप अधर्मते ॥
बुद्धि सुख दुख भोगकारण जान पाप अधर्मकी ।
मानवो एकात्मता दुहु पुरुष बुद्धि अधर्मकी ॥
अस्मिताको रूप तुम सन कह्यो चित देकर सुनो ।
अज्ञानवश हुइ आतमाको सुःख दुख भोक्ता गुनो ॥

अर्थ-पुरुष दृक्शक्ति और बुद्धिदर्शनशक्ति है आत्मा नित्यसुखी पाप और अधर्मके बंधनोंसे रहित है और बुद्धि अधर्म और पाप दुःख सुखके भोगकी कारण है यदि भ्रमरहित पुरुष और बुद्धिकी एकात्मता हो जावे तो अस्मितानाम क्लेश प्रकट हो जाता है उस अज्ञानके वशमें होकर आतमाकोही सुख और दुःखका भोक्ता मान बैठता है इसीको अस्मिताक्लेश कहते हैं ॥ ६ ॥

सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

दो०-सुख अभिलाषा राग है, तामें चित वस जाय ।
तब सुखहित नाना करम, धर्म अधर्म कराय ॥

अर्थ-सुखकी अभिलाषाका नाम राग है जब चित्त सुखसे वसकर सुखकी इच्छा करता है तब सुखके निमित्त नाना प्रकारके धर्म अधर्म कर्मोंको करने लग जाता है॥

भा. छंद०-सुख अनंतर स्मृती जो राग ताको नाम है ।
जौन जौन पदार्थमें सुख भयो पूरब भान है ॥
पुनि देखि ताही वस्तुको जो होत तृष्णा सुःखकी ।
राग ताको नाम है जिहि माहि इच्छा चित्तकी ॥

अर्थ-सुख होनेके पश्चात् जो उस सुखकी यादका उदय होता है उसे राग कहते हैं पहले जिस २ पदार्थसे सुख पाया है उसी पदार्थको फिर देखकर जो सुखकी तृष्णा होती है सो सुखकी प्राप्तिके निमित्त पदार्थमें चित्तकी इच्छा तथा तृष्णा होनेका नाम राग है ॥ ७ ॥

दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

दो०—दुखसाधनको देखकर, होत चित्तमें क्रोध।
द्वेषरूप सो जानिये, रहत नहीं कछु बोध ॥

अर्थ—दुःखदाई साधन और सामिग्रियोंको देखकर जो चित्तमें क्रोधका उत्पन्न होना है वही द्वेष कहाता है क्रोधके वश हो जानेसे उस समय कुछ ज्ञान नहीं रहता है ॥

भाष्य दो०—दुःख अनंतर होत है, जौन दुःख तिहि देखि।
होत क्रोध ताको कहत, मुनिवर द्रष्टी द्वेषि ॥
जौन जौन दुख पूर्वमें, भोग चुके जो जंतु।
तिनके मिलतहि क्रोधवश, होत द्वेषयुत संतु ॥

चौ०—पूर्व काल जिनसो दुख पायो। तिनने पुनि कहुँ दर्श दिखायो॥
कर पूरव दुखस्मृति मनमें। करत क्रोध इच्छा नहिं तिनमें ॥
जैसे अजहूं जीव जंतु भव। दुखदाताको देखि डरत सब ॥
तिनको डरत देखि यह भासै। पूरवको दुख तिनहिं प्रकाशै ॥
ताहीसो डरपत है तिनसों। पूरव दुख भये सब जिनसों ॥
याको नाम द्वेष कर जानों। सत्य कहत जियमें अनुमानों ॥
द्वेष अविद्याकृत अनुमानो। त्याग करहु दुखदा पहिचानो ॥
द्वेषरूप बुद्धी जिहिं होई। तासों वैर करत सब कोई ॥

अर्थ—दुःखके पीछे फिर कभी जो दुःखका दर्शन होवे तो चित्तमें क्रोध होता है दुःखसे चित्तको द्वेष करनेका नाम द्वेष है जिस पदार्थमें जिस जीवको दुःख हो चुका है उस पदार्थको फिर देखनेसे चित्त उसको नहीं चाहता। क्रोध हो आता है दुःखद पदार्थकी मनमें अभिलाषाका न होनेका नाम द्वेष है । पूर्व समयमें जिससे दुःख पाया है उसका फिर दर्शन होनेसे पूर्वभोग दुःखकी याद करके चित्त क्रोधयुक्त होता है और उस दुःखकी इच्छा नहीं करता जैसे अबभी संपूर्ण जीवजंतु जिनसे पूर्व दुःख पाया हो उनसे डरते हैं उनको डरते देखकर यह विदित होता है कि इनको पूर्वमें कभी इनसे दुःख हुआ होगा इससे अब इनको देखकरही यह डरते हैं चित्तका

दुःखोंसे डरकर पीछेको हटना द्वेष कहाता है यह द्वेष अविद्याकृत है इससे दुखदाई समझके त्यागनीय है और जिसकी बुद्धि द्वेषयुक्त होती है उससे सब कोई वैर करने लगता है और कभी इस द्वेषके वश वह सुख नहीं पाता इससे श्रेष्ठ पुरुषोंको त्यागनीय है ॥ ८ ॥

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥ ९ ॥

दो०–विदुषनकोहु मरणभय, रहत मूर्खके तुलय ।
स्वाभाविकही जानिये, मरण त्रास बाहुलय ॥

अर्थ–मरणभय पंडितोंकोभी मूर्खोंके तुल्यही होता है । यह मरणभय स्वाभाविक सबको होता है इससे यह मरणत्रास अपार और अखंड प्रवाहरूप जानना चाहिये ॥

भा. चौ.-स्वरसवाहि विद्वान विमूढा । होवैं अभिनिवेश आरूढा ॥
पूरव जन्म मरण बहु वारा । अभिनिवेश कर अर्थ विचारा ॥
मरणत्रास वश सब जग जानों।स्वाभाविक प्रभाव तिहि मानो ॥
तातै जान अखंड प्रवाहा । पुनि पुनि जन्मत मरत अथाहा ॥

दोहा–पूर्वजन्मके मरणभय, डरपत इहि तनु पाय ।
जैसे बालक डरत है, देख भयावन काय ॥
इहि प्रकार भय करत सब, जीव जन्तु मनुजात ।
देख भयानक वस्तुको, कंपत तिनको गात ॥

छंद–यहि कहहिं ऐसो है असंभव तौ सुनो चितलायके ।
अविद्यादि दुख पांचके पर्याय गण फल पायके ॥
तम मोह पुरुष महामोह जो तामिस्र अँधतामिस्र हैं ।
सो अविद्या अस्मिता और राग द्वेष निवेश हैं ॥

दोहा–अहमिति प्रकृति महत्व अरु, शब्द स्पर्श स्वरूप ।
रस गन्धादिक जानिये, अष्ट अनातम रूप ॥

चौ०—अनआत्मा आत्माकर जानहु । ताहि अविद्यातम कर मानहु ॥
अणिमादिक आठहु सिधिपाहीं । करत अहंबुद्धी मनमाहीं ॥
मोह अस्मितारूप कहावत । दिव्य आदिव्य आदि दस गावत ॥
इनसों प्रीति कहावत रागा । महामोह कर मान विभागा ॥
ते दश विषम भोग जो विघ्ना । द्वेष कहत तामिस्र प्रतिघ्ना ॥
अणिमादिक शब्दादि अष्टदश । पावत नाश मनोरथके रस ॥
अभिनिवेश याहीको गावै । अँधतामिस्रहु ताहि बतावै ॥
द्वै प्रकारके होत कलेशा । स्थूल और सूक्ष्म भेद लवलेशा ॥

दोहा—भोगकाल स्थूल हैं, क्रिया योगते सूक्ष्म ।
अब सूक्षमको नाशहित, कहत उपाइ सभूम ॥

अर्थ—विद्वान् और मूढ दोनोंको स्वाभाविकही मरणभय होता है पूर्वजन्ममें जो अनेक वार मरण भया है उसेही मरणत्रासवा अभिनिवेश कहते हैं यह मरणत्रास स्वाभाविकही संपूर्ण जगत्को होता है इसीसे इसका अखंड प्रवाह है बारबार जन्म लेना और बारबार मरना यादि इसका अथाह प्रवाह है पूर्वजन्ममें जो मरणभय हो चुका है उसीकी वासना बनी रहनेसे इस जन्ममें डरता है तत् क्षणके जन्म लिये बालक आदिकी मुखकी आकृति देखनेसे विदित होता है कि यह किसी भयावनी वस्तुको जिससे इसने पूर्वजन्ममें दुख पाया है डरता है इसी प्रकार संपूर्ण जीव जंतु भयानक रूपको देखकर कांप उठते हैं इससे पूर्व जन्मका डरा हुआ प्रतीत होता है यदि यह कहा जाय कि ऐसा भय होना असंभव है तो चित्त लगाकरके सुनो अविद्या आदिक पंचक्लेशोंके पर्य्याय है (तम अविद्याका, मोह अस्मिताका, महामोह रागका, तामिस्र द्वेषका, अंधतामिस्र अभिनिवेशका पर्याय है) अर्थात् अविद्याको तम, अस्मिताको मोह, रागको महामोह. द्वेषको तामिस्र, अभिनिवेशको अंधतामिस्रभी कहते हैं । अहंकार १, प्रकृति २, महत्तत्त्व ३, शब्द ४, स्पर्श ५, रस ६, रूप ७, गंध ८ इन आठोंका नाम अनात्मा है सो अनात्मामें आत्मबुद्धिके होनेका नाम अविद्या तथा तम कहाता है इसी प्रकार अणिमादिक आठों सिद्धियोंको पाकर उनमें अहंबुद्धि करना अस्मिता अथवा मोह जानना चाहिये । अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व ये ८ सिद्धि कहाती हैं और शब्दादिक विषयके दिव्य अदिव्य भेदसे दस भेद हैं इनमें प्रीति होनेको राग वा महामोह और इन दस विषयोंके भोगमें विघ्न होनेका नाम द्वेष और तामिस्र है और अणि-

मादिक आठ सिद्धि और शब्दादिक दश इन अठारह मनोरथोंके नाश होनेके भय-का नाम अभिनिवेश वा अंधतामिस्र जानना चाहिये। ये क्लेशभी दो प्रकारके एक स्थूल दूसरे सूक्ष्म होते हैं भोगकालमें क्लेश स्थूल होते हैं और क्रियायोगसे सूक्ष्म हो जाते हैं अब सूक्ष्म भये क्लेशोंके नाशका उपाय कहते हैं ॥ ९ ॥

ते प्रतिप्रसवं हेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

दोहा–क्रियायोगते होत हैं, पञ्च क्लेश अति छीन ।
असंप्रज्ञात समाधिवश, होत मूलते हीन ॥

अर्थ–क्रियायोगसे पांचों क्लेश अति दुर्बल हो जाते हैं और असंप्रज्ञात समाधिसे मूलसे उनका नाश हो जाता है ॥

भा. छं.-सर्वथा नहिं नाश पावत कहे पूर्व कलेश जे ।
योगकृततें होय सूक्ष्म रहत प्रकृती देशजे ॥
हुइ विवेक अख्याति ते जब ज्ञान आत्मारामको ।
तब अविद्या नाश पावत चित्तलय परिणामको ॥
लय होत चितके नशत हैं सब बीज सूक्ष्म क्लेश कर ।
नाहिं रहत है लवलेश दुखसुख पाव मोक्ष विशेषकर ॥

अर्थ–जो पूर्वमें अविद्यादि पांच क्लेश वर्णन किये गये हैं उनका सर्वथा नाश नहीं होता वे क्रियायोगसे अत्यंत सूक्ष्म होकर प्रकृतिमें लय रहते हैं जब विवेक-द्वारा आत्माका ज्ञान होता है तब अविद्याका नाश और चित्त परिणामको प्राप्त होकर लय हो जाता है जब चित्तका आत्मामें लय होता है तभी सूक्ष्म क्लेशोंके बीज नाश हो जाते हैं और दुःखका लवलेशभी नहीं रहता और मोक्षके विशेष सुखको पाता है ॥ १० ॥

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

दोहा–क्रियायोगते सूक्ष्मकर, क्लेशवृत्ति है जोइ ।
प्रसंख्यानके ध्यानसो, दग्धबीजसम होइ ॥

अर्थ–क्रियायोगसे क्लेशवृत्तियां सूक्ष्म करके फिर ईश्वरके ध्यान करनेसे उनका बीज दग्धतुल्य होता है ॥

भा. छंद.-मोहात्मिका जे वृत्ति हैं तिहि जीत ईश्वरध्यानसों।
होंहि ते निर्मूल जब तब पाव आतमज्ञान सो।
विना आतमज्ञानके लय होत नाहिं चित राममें।
नहिं पाव मुक्ती विना चितलय जात नहिं विसराममें।

अर्थ-मोहात्मिका जो वृत्ति है उनको ईश्वरके ध्यानसे जीते जब मोहात्मिका वृत्तियोंका मूल नाश होता है तब आत्मज्ञान होता है विना आत्मज्ञानके चित्तका लय आत्मामें नहीं होता और विना चित्तके लय हुए मुक्तिरूप विश्राम नहीं मिलता है॥ ११॥

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टा दृष्टजन्मवेदनीयः॥ १२॥

दो०-आशय धर्म अधर्मको, क्लेशमूल तिहि जान।
इहामुत्रमें जन्मप्रद, दृष्टादृष्ट प्रमान॥

अर्थ-जो धर्म अधर्मका आशय है वही क्लेशोंका मूल है यह कर्माशय दो प्रकारका है एक दृष्टजन्मवेदनीय दूसरा अदृष्टजन्मवेदनीय दृष्टजन्मवेदनीय इस जन्मके भोगादिका नाम है अदृष्टजन्मवेदनीय वह है जो जन्मान्तरमें होनेवाला हो॥

भाष्य० दो०-कर्मनको आशय महा, है क्लेशनकी मूल।
दृष्ट अदृष्ट जन्म सब, देत जनाय अभूल॥

चौ०-जो इहि जन्म जान ये योगा। दृष्ट जन्म जानहु सब लोगा॥
जो जन्मांतर जान्यो जाई। जन्म अदृष्ट जान सो भाई॥
कर्माशयते उत्पति मोहा। काम और लोभ क्रोध पुनि जोहा॥
इनके विषयन प्राप्त होत जब। प्राप्त भये पुनि नष्ट होत तब॥
उपजत क्लेश महा दुखखानी। क्लेशमूल कर्माशय जानी॥
इहि प्रकार मोहादिक जेते। मोक्षबंध अरु दुखप्रद तेते॥

दो०-कर्माशयको जानिये, पुण्य पापकी खान।
उपजत हैं ताते महा, काम क्रोध मद मान॥
आराधन प्रभुके किये, ज्ञान अरु सिद्धि विभूति।
पावत यही शरीरमें, पुण्य कर्म करतूति॥

ऐसेही या देहमें, पाप आचरण जासु।
पावत क्लेश और ग्लानि सब, होय निरादर तासु॥

अर्थ—कर्माशय संपूर्ण क्लेशोंकी मूल है और दृष्ट अदृष्ट जन्मके शुभाशुभ कर्मोंके फलको दिखानेसे दृष्टजन्मवेदनीय और अदृष्टजन्मवेदनीय कहाता है जो इसी जन्ममें जानने योग्य है वह दृष्टजन्मवेदनीय और जो जन्मान्तरमें जाना जाता है वह अदृष्ट-जन्मवेदनीय कहाता है कर्माशयसे काम क्रोध लोभ मोह उत्पन्न होते हैं और इनके विषय जब प्राप्त नहीं होते अथवा प्राप्त होनेपर नष्ट हो जाते हैं तबही महादुःखदाई क्लेश उत्पन्न होते हैं इसलिये कर्माशयको क्लेशोंकी मूल जानना चाहिये इसी प्रकारसे मोहादिक अर्थात् काम क्रोध लोभ मोह जितने हैं वे सब मोक्षके बंधन और दुःखके देनेवाले हैं कर्माशय पुण्य पापकी खान है उसीसे काम क्रोध लोभ मोहादिक उत्पन्न होते हैं सो प्रभु अर्थात् ईश्वरके आराधन ध्यान और पुण्यकर्मसे ज्ञान और सिद्धि इसी शरीरमें प्राप्त हो जाती है इसी प्रकार इस देहमें जिसके पाप आचरण है उसको संपूर्ण क्लेश और ग्लानि प्राप्त होती है और संसारमें उसका निरादरभी होता है॥

छ०—वेदनिय दृष्ट जन्मके जे पूर्वमें वर्णन किये।
अब कहत आगे अदृष्टको तिहि ध्यान दे धारहु हिये॥
धर्मयुत जे स्वर्ग पावत पाव नरक अधर्मते।
मरणके पर्यंत जो कछु होत कर्म अकर्मते॥

दो०—पुण्य कर्मके करतही, नन्दीश्वर इहि जन्म।
प्राप्त भयो इहि देहमें, देवरूप विन शर्म॥
पापकर्मके करत ऋषि, शाप कोपहर दीन।
देहत्याग अपराधते, नहुष सर्पतन लीन॥

अर्थ—दृष्टजन्मवेदनीयका वर्णन तो पहले किया गया है अब आगे अदृष्टजन्म-वेदनीयको कहते हैं ध्यान देकरके हृदयमें धारण करना चाहिये। धर्म करनेवालोंको स्वर्ग और पाप करनेवालोंको नरक प्राप्त होता है मरणके पर्यंत जो कुछ शुभाशुभ कर्मको प्राप्त होता है वह अदृष्टजन्मवेदनीय है देखो पुण्यकर्मसे नंदीश्वरने इसी जन्ममें देवशरीरको पाया और पापकर्मके करनेसे ऋषियोंके शापसे नहुषको सर्प-शरीर धारण करना पडा॥ १२॥

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥

दो०–क्लेशमूल धर्माधरम, तिहि बिपाक फल तीन ।
जाति आयु और भोगकर, जानहि परम प्रवीन ॥

अर्थ–धर्म और अधर्महो क्लेशमूल है तिनके फल तीन प्रकारके होते हैं एक जाति दूसरा आयु तीसरा भोग इसको चतुर पुरुष जानते हैं ॥

भा. चौ०–मूलरूप क्लेशनकर आशय।जाति आयु अरु भोग प्रकाशय
जैसे तुषयुत धान्य अदग्धा । निपजत क्षेत्र माहिं आति शुद्धा ॥
तुषारहित और दग्ध धान्य जो । निपजत नाहिं कर कोटि यतनसो॥
तैसे क्लेशसमूल निमूला । कर विचार जानहु युग कूला ॥

दोहा–असंप्रज्ञातकी अग्नितें जल्यो न जाकर बीज ।
जाति आयु और भोगके, पावत दुःख अछीज ॥

छं०–देव मानुष तीर्यगादिक, जाति ते जानहु घनी ।
श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ योनी पाव सुख दुखदा भनी ॥
आयुते सामान्य न्यून और अधिक समयो जानियें ।
आतमा और देहको संयोग इन्द्रिय मानियें ॥
इन्द्रियनके विषयवश जन सुःख दुख पावत घने ।
भोग तिनको नाम जानो गणित वर्णन नहिं बने ॥
विचारकर मनमाहिं देखो ज्ञान ऐसो होत है ।
अनुमानद्वारा कहत ताको कर्मजन्म उद्योत है ॥

दो०–एक जन्म कर हेतु नहिं, एक कर्म सुन मीत ।
अमित जन्म नहिं होत हैं, एक कर्म यह नीत ॥
अमित कर्मते होत नहिं, जन्म अनेक सुजान ।
अमित कर्म मिल करत हैं, एक जन्म अनुमान ॥

अर्थ–मूलरूप क्लेशोंके आशयके परिपक्क होनेसे उनके तीन जाति, आयु और

भोग फल होते हैं समूल क्लेशोंके आशयसेही तीन फल होते हैं मूलहीन क्लेशोंके आशयसे कोई फल नहीं होता जैसे तुषसहित अदग्ध धान्य क्षेत्रमें पडनेसे शुद्धतासे उपजता है और तुषरहित दग्धधान्य कोटि यत्न करनेपरभी अंकुरित नहीं होता इसी प्रकार समूल क्लेशसे जाति आयु योगरूप फल होता है निर्मूल क्लेशाशयसे कुछभी फल इनमेंसे नहीं होता है जिन क्लेशोंका बीज असंप्रज्ञात समाधिकी अग्निमें नहीं जला उनसे जाति आयु भोगरूप दुःख सुख होते रहते हैं देवता मनुष्य, तीर्यग्योनि अर्थात् पशु पक्षी आदिकका नाम जाति है वह जाति श्रेष्ठ अश्रेष्ठ दो भांतिकी होकर सुख दुःखकी देनेवाली कही गई है और आयुसे सामान्य काल न्यून्यकाल अधिककाल जानना चाहिये यह समयवाची है आत्मा और देहके संयोगसे जो सामान्य न्यूनाधिक समयतक जो दुःख सुख होता रहता है उस दुःख सुख होनेका नाम आयु है और आत्मा और देहके संयोगसे इंद्रियद्वारा इन्द्रियोंके विषयोंके दुःख सुखको भोगनेका नाम भोग है यह भोग अनेक प्रकारका होता है यदि विचार करके मनमें देखा जाय तो ऐसा ज्ञान होता है उसे आगे कहते हैं अब अनुमानके द्वारा कर्मोंके अनुसार जन्म होनेको आगे कहेंगे एक जन्मका कारण एक कर्मको कहा जाय तो नहीं बनता क्योंकि पूर्व जन्मोंमें जो कर्म शेष रहे उनके फलका और वर्तमान कर्मोंके फलका अभाव सिद्ध होता है इससे एक जन्मका कारण एक कर्म नहीं हो सक्ता है और यदि अनेक जन्म एक कर्मसे माने जांय तो शेष कर्मोंके फल प्राप्त होनेके लिये कोई समयही नहीं मिलता इससे यह सिद्ध हुआ कि एक कर्मसे अनेक जन्मभी नहीं होते और अनेक कर्मसे अनेक जन्मका होनाभी संभव नहीं क्योंकि एक साथ अनेक जन्म नहीं हो सक्ते इससे यही सिद्ध भया कि अनेक कर्म मिलकर एक जन्मका कारण होते हैं अर्थात् अनेक कर्मोंसे एक जन्म होता है यही अनुमानद्वारा सिद्ध होता है ॥

छंद०–हेतु वर्णत नहिं बने इक जन्मको इक कर्म जो ।
शेष कर्मन भोग अघटित लहत चित्त न शर्म जो ॥
जो अमित जन्महु कहत हैं इक कर्मते सुन तातजू ।
तो मिलत नाहीं कालभोगन कर्म बाकी जातजू ॥
यदि कहत हैं जो अनेक जन्मन हेतु अगणित कर्मको ।
नहिं होत कबहूँ जन्म देख्यो एक बार अनेकको ॥
विचार कर इहि भांति जान्यो जन्मते गण मरणलों ।
किये जे शुभ अशुभ मिल सब इते एकहि जनमको ॥

सो०—भोगत है यह जीव, पूर्वजन्मसंस्कारको ।
त्रियविपाककी सींव, जात आयु पुनि भोगप्रद ॥

दो०—एक जन्मकी प्रकटता, एक भविक तिहि जान ।
नियतानियत विपाकके, युग्म भेद पहिचान ॥

चौ०—वेदनीय दृष्ट जन्म जो होई । नियतविपाक कहावत सोई ॥
एकभविक और त्रीण विपाका । नियत कर्मफल है पुनि जाका ॥
जन्म अदृष्ट वेदनीय जानो । ताहि विपाक अनीयत मानो ॥
एक भविक नहिं इनकर रूपा। अनियत फल गतिकृष्ण अनूपा॥

छंद०—कृत पाप होत विशेष नाहीं पुण्यते तिहि नाश हैं ।
ताहि गावत हैं श्रुती और वेद करत प्रकाश हैं ॥
कर्म कृष्ण और शुक्ल पापी पुरुषके द्वै भांतिके ।
नसत हैं ते पुण्यकृतसों पाप नाना जातिके ॥
कर्म है त्रिय भांतिको जिहि शुक्ल केवल पुण्य है ।
कृष्ण शुक्ल हु जानिये मिल पुण्य पातकपुंज है ॥
पाप केवल देत दुख बहु नाम जाको स्याम है ।
नसत प्रायश्चित्तसों सब कर्म मिश्रित नाम है ॥

दो०—इहि प्रकारते कर्मगति, जानहु महा विचित्र ।
दुर्ज्ञेय अति मुनिवर कहत, कर विचार सुन मित्र ॥

अर्थ—एक कर्म एक जन्मका कारण कहते नहीं बनता क्योंकि शेष कर्मोंके फलका भोग नहीं घटता और जो एक कर्मसे अनेक जन्म कहें तो शेष कर्मोंके भोगको समय नहीं मिलता और अनेक कर्मसे अनेक जन्म माने जांय तो कभी एक समयमें अनेक जन्म होते नहीं देखे गये विचारपूर्वक देखनेसे यही निश्चय होता है कि, जन्मसे मरणतक जितने शुभ अशुभ कर्म किये हों वे सब मिलके एक जन्मकोही देते हैं । जीव पूर्वजन्मके कर्मसंस्कारको भोग करता है सो कर्मका फल तीन प्रकारका है जाति आयु और भोग एक जन्मके होनेसे एकभविकभी कहाता है और कर्मविपाकके नियत और अनियत दो भेद और होते हैं दृष्टजन्मवेदनीय अर्थात्

जो इस जन्मके भोग हैं उन्हें नियतविपाक कहते हैं । एकभविक अर्थात् एक जन्ममें जाति आयु भोग तीन विपाक होते हैं और हरएक विपाक नियतानियतभेदसे दो प्रकारका है जिस कर्मका फल इस जन्ममें दृष्टपथ हो उसको नियतविपाक कहते हैं और अदृष्टजन्मवेदनीयको अनियतविपाक कहते हैं अर्थात् जिसका फल जन्मान्तरमें होनेसे अदृष्ट रहता है उसे अनियतविपाक कहते हैं परंतु इसकेभी तीन विपाक होते हैं जो पाप थोडा होता है वह पुण्यसे नाश हो जाता है ऐसे वेदकी श्रुति कहती हैं पापी पुरुषोंके कृष्ण कर्म और शुक्ल कर्म दो प्रकारके होते हैं वे सब पुण्य कर्मसे नाश हो जाते हैं कर्म तीन प्रकारका होता है शुक्ल कर्म केवल पुण्यका नाम है कृष्ण शुक्ल कर्म पाप पुण्यमिश्रितका नाम है कृष्ण कर्म केवल पापकोही कहते हैं यह अत्यंत दुखदाई है इसका नाश प्रायश्चित्तसे हो जाता है इस प्रकारसे कर्मगति विचित्र है मुनिवर इस कर्मगतिको दुर्ज्ञेय कहते हैं विचार करके जानना चाहिये॥ १३ ॥

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥

दो०-जाति आयु और भोगचय, देत हर्ष परताप।
पुण्य हर्षप्रद जानिये, पापमहादुखदाय ॥

अर्थ-वे जाति आयु और भोग तीनों हर्ष और ताप देनेवाले हैं पुण्यसे हर्ष और पापसे महादुःख और ताप होता है ॥

भा.चौ.-पापपुण्यमय तीन विपाका। फल सुख दुःखरूप युत जाका ॥
जिनकी उत्पाति पुण्य हेतुकर। ते सुखप्रद मानहु सब प्रियवर॥
पापहेतुकर उत्पतिदापा । देत महादुख और परितापा ॥
जाति आदि गति त्रिधा बखानी।कर विचार मन समुझहिं ज्ञानी॥

अर्थ-पाप पुण्यमय तीन विपाकोंका फल सुख और दुःखरूप है जिस विपाककी उत्पत्ति पुण्यसे होती है उससे सुख होता है और जिसकी पापसे होती है उससे दुःख और परिताप होता है यह जाति आदिकी तीन प्रकारकी गति कही गई विचारपूर्वक ज्ञानीजन इसको समझ सक्ते हैं ॥ १४ ॥

√ परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

दो०–विषयनमें सुख लसैं, दुःखरूप सब जान ।
परिणामताप जिहि सुखमें, ताहि दुःखकर मान ॥
मूढनको तो विषय सब, सुखसमान कर भास ।
ज्ञानीजनको जगत सुख, दुखसम करत प्रकाश ॥

अर्थ–जो सुख विषयोंमें दीखता है वह सब दुःखरूप है क्योंकि जिस सुखका परिणाम दुःखरूप हो वह सुख दुःखही मानना चाहिये मूढ पुरुषोंको तो विषयसुख सुखके समान प्रतीत होते हैं और ज्ञानी पुरुषोंको जगत्के सर्व सुख दुःखकेही समान प्रकाशित होते हैं ॥

भा. दो०–परिणाम ताप संस्कारके, दुख गुणवृत्तिविरोध ।
सांसारिक सुख दुःखसम, पुरुष विवेकी सोध ॥
विषययोगकी प्राप्तिते, इन्द्रिय जानहु शांति ।
शांतिरूप सो सुख है, मत मानो चितभ्रांति ॥

चौ०–तृष्णाविषय न पूर्ण भये पर । नाश भये पुनि प्रिय पदार्थकर॥
तथा वियोग होत हित करते । प्राप्ति भये पुनि द्वेष वयरते ॥
इन्द्रियादिमें व्याकुलता जो । दुखपरिताप कहावत है सो ॥
राग होत जिन विषयनमाहीं । होत विदित सुख तिहिं छिनमाहीं
वह सुख अंत दुःखकर कारण । होत अविद्याकृत दुख दारुण ॥
यद्यपि होत प्रतीत सुःख जो । होत दुःख परिणामकाल सो ॥
क्लेशमूल तिहिं जानत योगी । त्याग करत अस सुःखवियोगी॥
रागते होत विषयकी इच्छा । पूर्ण होत जिहि काल प्रतिच्छा ॥
तिहिं क्षणमें सुख स्थित जानो । ताते लोभ विषयकर मानो ॥
तृष्णा बढत अभ्यास लोभके । बढत मनोरथ विषय भोगके ॥
जब लालसा पूर्ण न होई । इष्ट पदारथ पाव न सोई ॥
तबहिं विषयसुख हुइ दुखरूपा । डारत पुनि संसृतिके कूपा ॥

दो०–ईहि प्रकारते विषयसुख, अंत होत दुखहेत ।
पुनि पुनि डारत बंधमें, मुक्ति होन नहिं देत ॥

छं०—रागके बाढत मनोरथ पूर्ण हो जिहि भांतिते ।
करत धर्म अधर्म पाप और पुण्य जातिते ॥
परिणाममें दुख होत तिनसो जन्म हो पुनि पुनि मरें ।
विचारते जो रहित सो अज्ञानवश अनुचित करें ॥
यदपि होत सुखभोगमें अरु अंत दुखकर हेतु जो ।
परिणाममें दुख होत नाना दण्ड व्याधि विपत्ति जो ॥
भोगको सुख नित्य सो दर्सात पै सो अनित्य है ।
नाश सुखको भय महा परिणाम दुखदा अमित है ॥

दो०—दुखदाता जो वस्तु जग, चेतन और अचेत ।
भयसों तिनके नाशहित, रचत यत्न सुखहेत ॥

सो०—लक्षण मानहु ताप, सुखकारण अनुचित करत ।
ताको फल परिताप, त्याग देहु अस जान तिय ॥

दो०—पूर्वमें दुख सुख भये, कर स्मरण तिनकेर ।
दुख साधनते द्वेष कर, सुखसो प्रीति घनेर ॥
सुखनिमित्त ते करत है, पाप पुण्य बहु भांति ।
तत्व दृष्टिते दुखद सब, नहिं कहुं पावत शांति ॥

चौ०—तापदुःखके जो कछु भेदा । तुमसन कहे मिटहि जिहि खेदा ॥
अब सब कहत दुःख संस्कारा । तिहि प्रवाह कर नहिं विस्तारा ॥
जैसे ऊर्णा तंतु परत चखु । कोमल नेत्र विदित ताकर दुख ॥
तिमि योगिनको अनुभव होई । विषयी पुरुष न जानहि सोई ॥
अन्य अंग इव विषयी लोगा । दृगसम योगी जानन योगा ॥
स्वाभाविक दुख गावत सोधा । ते जानहु गुण वृत्ति विरोधा ॥
सुख आत्मिक सतगुण कह जानो।रजकह दुख आत्मिक अनुमानो ॥
मोहात्मिक तम जानहु भाई । सत रज तमकी वृत्ति सुहाई ॥

धर्म विराग ज्ञान सत गुणते। राग ऐश्वर्य अधर्म रजसतते॥
तमते अनऐश्वर्य अज्ञाना। वृत्ति विरोध होत दुख नाना॥
वृत्ति चपलता दुखका हेतू। धर्माधर्म विमुख गति चेतू॥
कबहुँ गहत चित धर्म और कर्मा। गतिहि विरोधकरकबहुंअधर्मा॥

दो०–कबहूं विमुख अधर्मते, धर्म कराहि चित लाय।
तिहि कर उपजत ग्लानि जो, सो दुखमूल बताय॥

अर्थ–परिणाम ताप संस्कार तीन प्रकारका दुःख होता है अथवा गुणवृत्तियोंके विरोधसे अर्थात् गुणवृत्तियोंका फल न होनेसे सांसारिक सब सुखोंको विवेकी पुरुष दुःखहीके तुल्य मानते हैं अब सांसारिक विषय सुख व दुःखके लक्षण इस प्रकार जानने चाहिये जब विषयभोग करके इन्द्रियां शांत होती हैं यह इन्द्रियोंका शांत होनाही संसारिक सुख है यहां शांतिका अर्थ तृप्ति होनेका है और विषयोंकी लालसाका पूर्ण न होना अथवा प्राप्त विषयोंके नाश होजानेसे दुःख होता है उसे सांसारिक दुःख कहते हैं अथवा हित पदार्थके वियोग हो जानेका नामभी दुःख और परिताप कहा जाता है जिस समयमें विषयमें राग अर्थात् प्रीति होती है उस समय तो विषयोंमें सुख प्रतीत होता है और जब वह विषय न प्राप्त हो अथवा नाश हो जाय तो अंतमें वह विषयसुख दुःखका कारण होता है यद्यपि अविद्याके वश अज्ञान होनेसे वह सुखके समान प्रतीत होता है परंतु परिणाममें वह दुःखरूप होनेसे दुःखही है उस सुखको अंतमें वियोगी अर्थात् न रहनेवाला जानकर योगीजन उसको संपूर्ण क्लेशोंकी मूल जान त्याग कर देते हैं। रागसे विषयोंमें इच्छा होती है और इच्छा पूर्ण होनेके समय सुख प्रतीत होता है फिर जिस विषयसे सुख भया है उसमें अत्यंत लोभ बढता है लोभसे अभिलाषा होती है लालसासे विषयोंके मनोरथ बढते चले जाते हैं जब मनोरथ पूर्ण नहीं होता तथा जिसको चाहे वह पदार्थ प्राप्त नहीं होता तबही ये विषयसुख सब दुःखरूप हो जाते हैं और इस संसृतिके कूपमें डाल देते हैं इस प्रकारसे विषयसुख अंतमें दुःखका कारण होते हैं और इस जीवको बार २ बंधनमें डालते हैं इसको मुक्ति नहीं होने देते हैं रागके बढनेसे मनोरथोंके पूर्ण होनेके लिये जिस भांतिसे उसे मनोरथ पूर्ण होते दीखते हैं उसी प्रकार यत्न करनेको उद्यत हो जाता है और मनोरथोंकी पूर्णताके लिये धर्म अधर्म पाप पुण्य नाना प्रकारसे करता है तनकभी उसे धर्माधर्म पापपुण्यका ध्यान नहीं रहता सो वही धर्माधर्म पाप पुण्य अंतमें दुखदाई होकर बार २ जन्म धारण कराते और बार २ मारते हैं अर्थात् बार २ जन्मता और मरता है जो

विचारसे रहित हैं वे अज्ञानवश ऐसा अनुचित कर्म करते हैं यद्यपि भोगमें सुख प्रतीत होता है परंतु अंतमें वह दुःखका कारण है क्योंकि अज्ञानवश अनुचित कर्म करनेसे दण्ड व्याधि विपत्ति आदिक होते हैं । भोगका सुख नित्यसा दीखता है परंतु उसको अनित्य समझना चाहिये क्योंकि उस सुखमें उस सुखके नाशका भय लगा रहता है इससे परिणाममें अमित दुखदाई है यह परिणामदुःख है जो दुखदाता सांसारिक चेतन अथवा अचेतन वस्तु है उनसे दुःख प्राप्त हो जानेके भयसे उनके नाशका उपाय अपने सुखके निमित्त रचता है इसीको संताप कहते हैं जो अपने सुखके निमित्त अनुचित करता है इससे परितापरूपी फल प्राप्त होता है इससे इसे परितापका देनेवाला जानकर त्याग देना चाहिये पूर्वमें जो दुःख सुख हो चुके हैं तिनका स्मरण करके दुःखसाधनोंसे द्वेष और सुखसाधनोंसे प्रीति करता है सुखके कारणसे प्राणी नाना प्रकारके पाप पुण्य करता है, परंतु ये सब सुख तत्त्वदृष्टिसे दुःखही प्रतीत होते हैं शांति नहीं मिलती यहांतक ताप दुःखोंके जो भेद थे कहे गये इसके सुननेसे दुःखोंसे छूट जाता है । अब संस्कारदुःख कहे जाते हैं जिनके प्रवाहका विस्तार नहीं है जैसे ऊनवस्त्र अथवा मकडीके तंतुका अवयव नेत्रमें पड जानेसे नेत्र कोमल होनेके कारण उस ऊनके तंतुके दुखको जानता है अन्य अंग नहीं जान सक्ता है इसी प्रकार संस्कारज दुःखको योगी जन जिनका आत्मा कोमल है जानते हैं अन्य पुरुष नहीं जान सक्ते जो दुःख गुणवृत्तियोंके विरोधसे होते उसको स्वाभाविकभी कहते हैं सतोगुण सुखात्मिक और रजोगुण दुःखआत्मिक और तमोगुण मोहात्मिक जानना चाहिये । धर्म वैराग्य और ज्ञान सतोगुणकी वृत्ति हैं । राग ऐश्वर्य और अधर्म रजोगुणकी वृत्ति है तमोगुणकी वृत्ति अनैश्वर्य और अज्ञान है इन वृत्तियोंके परस्पर विरोधसे नाना प्रकारका दुःख होता है । यह वृत्तियोंकी चंचलता दुःखका कारण है इसके वश चित्तकी गति ऐसी हो जाती है कि कभी धर्मसे विमुख होकर अधर्म करता और कभी अधर्मसे विमुख धर्म करने लग जाता है ऐसा करनेसे जो ग्लानि आदि उत्पन्न होती है वह दुःखकी मूल जाननी चाहिये ॥

छंद–जैसे अरंभत धर्मको नर सत्व गुण प्रेरण किये ।
रज तथा तम होय उद्यत कष्ट दर्शावत हिये ॥
आप सबला होय चितमें धर्मको उच्चाट कर ।
थाप देत अधर्मको परिणाम दुःख दुरायकर ॥
जब सतोगुण सबल होइकर नाश करत अधर्मको ।
स्वयं राज महीप ज्यों प्रकटात सकल सुधर्मको ॥

इहि प्रकार विपर्यता गुणवृत्ति चित्त विरोधके ।
जानत विवेकी पुरुष दुख परिणाम सुख संसारके ॥

दो०—इहिं कारणते त्याज्य हैं, सांसारिक सुख सर्व ।
दुःखरूप परिणाममें, जान विवेकी खर्व ॥

अर्थ—जैसे मनुष्य सतोगुणकी प्रेरणासे धर्म करता है और सुख पाता है इसी प्रकार रजोगुण और तमोगुण जब उद्यत होते हैं प्राणीसे पाप कराके कष्ट देते हैं तमोगुण रजोगुण आप सबल होकर मनुष्यके चित्तसे धर्मको हटाके अधर्मको स्थापित कर देते हैं उस समय प्राणीको यह ज्ञान नहीं रहने देते कि इसके करनेसे परिणाममें कैसा दुःख भोगना होगा और जब सतोगुण सबल होता है तब अधर्मके कारण रजोगुण तमोगुणको हटाके स्वयं राजाके तुल्य राज्य करता है और धर्मोंको प्रकट करता है इस प्रकारसे गुणविपर्यता होनेसे चित्त विरोधको अर्थात् दुःखको पाता है इसीसे विवेकी पुरुष संतति सुखोंको परिणाममें दुखदाई जानते हैं इसलिये सब सांसारिक सुख त्यागने योग्य हैं यह बात विवेकी पुरुष जानते हैं कि यह सांसारिक सुख परिणाममें दुःखरूप हो जाते हैं ॥

दो०—जैसे वैद्यकशास्त्रमें, रोग निमित्त उपाय ।
नीरुजके लक्षण कहे, तैसे हि योग जनाय ॥
हेय और हेयहेतु सब, मोक्ष और मोक्ष उपाय ।
इनके लक्षण मुनि कहत, सुनो सकल चितलाय ॥

अर्थ—जैसे वैद्यकशास्त्रमें रोग रोगका कारण और रोगका उपाय तथा आरोग्यताके लक्षण कहे हैं तैसेही योगशास्त्रमें महर्षिपातंजलिनेभी कहे हैं हेय त्यागने योग्य हेयहेतु त्यागनीयका कारण मोक्ष सर्व दुःखोंसे छूटना और मोक्षउपाय अर्थात् मोक्षप्राप्ति होनेके उपायोंका कथन किया गया है उसको चित्त लगाकर सुनना चाहिये ॥ १५ ॥

हेयं दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥

दो०—होनहार जो दुःख है, ताको करहि उपाइ ।
मूलनाश तिनको करहि, पुनि प्रकटैं नहिं आइ ॥

अर्थ—जो आनेवाला दुःख है उसका उपाय करना चाहिये उपायद्वारा उनका मूल नाश करे जिससे फिर कभी प्रकट न होने पावे ॥

भा.चौ.-दुःख अनागत हेय कहावत । ताकों मुनिवर त्याज्य बतावत
दुःख व्यतीत भये जो कोई । ते नाहिं त्याज्य कहावत सोई ॥
वर्तमान दुख भोग वियोगा । अनआगत दुख त्याग न योगा ॥
ऐसो यत्न करहि चितलाई । जासे दुखकृत मूल नसाई ॥

अर्थ-अनागत अर्थात् जो आनेवाला दुःख है वह त्यागनीय कहाता है जो दुःख व्यतीत हो चुका है वह तो भोग लेनेसे नाशही हो चुका और वर्तमान दुःख भोगद्वारा मिटही जाता है इससे जो दुःख आनेवाला है वह त्यागनीय है उसका मन लगाके ऐसा यत्न करना चाहिये जिसके द्वारा दुःखोंकी मूल नाश हो जाय और फिर अंकुरित न हो ॥ १६ ॥

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

दो०-पुरुष और परधानको, जो संयोग विचार ।
होत सकल अज्ञानवश, हेय हेतुको सार ॥

अर्थ-प्रकृति दृश्य पुरुष द्रष्टा इनका जो संयोग है वह अज्ञानकृत हेय हेतु अर्थात् दुःखका कारण है ॥

भा. चौ०-द्रष्टु दृश्य कर जो संयोगा । जानहु हेय हेतु सब लोगा ॥
द्रष्टा पुरुष दृश्य गुणभोगा । हेय हेतु तिनकर संयोगा ॥
दृश्य रूप अब कहत होत जस । अगिल सूत्र मांहि वर्णत तस ॥
कर विचार धारहु मनमांही । जासे सकल दुःख मिट जांही ॥

अर्थ-द्रष्टा और दृश्यके संयोगको हेय हेतु जानना चाहिये द्रष्टा नाम पुरुषका है और दृश्य गुणकृत विषय जो इन्द्रियद्वारा भोगे जाते हैं उनका नाम है इन दोनोंका संयोगही हेय हेतु अर्थात् दुःखोंका कारण है अब अगले सूत्रसे दृश्यका जैसा रूप है कहा जाता है उसको विचार करके हृदयमें धारण करनेसे संपूर्ण दुःख मिट जाते हैं इससे उसको विचारद्वारा धारण करना चाहिये ॥ १७ ॥

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

दो०—सत्व रजस तम दृश्य हैं, प्रकाश क्रिया थित जान ।
भूतेन्द्रियकी आत्मा, भोग मोक्ष हित मान ॥

अर्थ—प्रकाशस्वभाव सत्वगुण क्रियास्वभाव रजोगुण स्थितस्वभाव तमोगुणको जानना चाहिये ये पंच भूत और इन्द्रियोंकी आत्मा हैं और भोग और मोक्षके कारण हैं ॥

भा. चौ-प्रकाश क्रिया और स्थितशीला । भूतेन्द्रिय आत्मिक सब लीला
भोग और अपवर्गनिमित ये । लक्षण दृश्य कहे सब हम ते ॥
सत्व रजस अरु तमस स्वरूपा । प्रकाश क्रिया और स्थितरूपा ॥
भोग मोक्ष कारण तिहिं जानो । मोक्षहेतु मनमें गहि ठानो ॥

दो०—सतगुणरूप प्रकाश है, क्रियाबुद्धि रजरूप ।
रहित क्रिया औ प्रकाशकर, ते स्थित तमकूप ॥
सतगुन कोमल बुद्धि है, तुरतहि पावत ताप ।
रजगुन दाता दुःखको, तमते मोह प्रताप ॥
ताहीते जीवातमा, कहत कि मोको ताप ।
अविवेकी भोगत रहत, ज्ञानी तजत प्रताप ॥

छंद०—तीन गुण जब होत सम तब रहत ज्ञान न द्वितीयको ।
नाम जानो प्रकृति ताको साम्यता गुण त्रीयको ॥
जो प्रकाश और क्रिया स्थितरूप गुणसमुदायको ।
प्रधान कारजरूप पांचों भूत इन्द्रिय कार्यको ॥
ज्ञान और अज्ञानरूपा देत और मोक्षको ।
भोग कारण है रजोगुण और तमोगुण योगको ॥
ज्ञानदाता सत्वगुणको मोक्षप्रद अनुमानिये ।
बुद्धिदाता भोगकी और मोक्षहू पहिचानिये ॥

सो०—पुरुष अहै निर्दोष, बध मोक्ष संग दृश्यके ।
होत जबहि संतोष, बंधन पावत पुरुष नहिं ॥

अर्थ-प्रकाश क्रिया और स्थित यह तीनों रूप सतोगुण आदि तीनों गुणके पंच भूत और इन्द्रियादिके द्वारा प्रकट होते हैं इसीसे भूतेन्द्रियात्मिक कहाते हैं और भोग मोक्षके कारण हैं दृश्यके लक्षण संपूर्ण कहे गये सतोगुण प्रकाशरूप रजोगुण क्रियारूप तमोगुण स्थितरूप और भोगमोक्षके कारण जानकर मोक्षकारणोंको अपने हृदयमें धारण करना चाहिये सतोगुणका रूप प्रकाश रजोगुणका क्रिया बुद्धिरूप है जो क्रिया और प्रकाशसे रहित केवल स्थितरूप मोह है वह तमोगुणका रूप हैं सत्वगुण कोमल बुद्धिका नाम है सतोगुणी बुद्धिवालेको तुरंतही गुणकृत तापप्राप्ति होती है रजोगुणसे दुःख और तमोगुणसे मोह होता है जिसका फल अधिक तापरूप है इसी कारणसे जीवात्मा कहने लगता है कि मुझे ताप है दुःख है अविवेकी पुरुष उस तापको अज्ञानवश नहीं जाननेसे भोगते रहते हैं। ज्ञानीजन उस तापदुःखको ज्ञानद्वारा जानकर त्यागनेका यत्न करते हैं जब तीनों गुणकी साम्यावस्था होती है तब द्वितीयज्ञान अर्थात् भेदज्ञान नहीं होता उसी तीनों गुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है जो प्रकाशक्रिया और स्थितरूप तीनों गुणोंका है उसका समुदाय अर्थात् साम्यावस्था प्रधानरूप है वही पंच भूत इन्द्रिय और काया आदिका कारण है और भूतादिक उसके कार्य हैं ज्ञान और अज्ञानमिश्रित इस दृश्यका रूप है इसलिये भोग मोक्षकी देनेवाली है रजोगुण और तमोगुण और इन दोनोंका संयोग भोगका कारण है और केवल सतोगुण ज्ञानदाता होनेसे मोक्षका कारण है इसी कारण बुद्धि भोग मोक्षकी देनेवाली कही है जब बुद्धि रजोगुणी तमोगुणी होती है भोग और दुखका कारण है और जब केवल सतोगुणी होती है तब मोक्ष देनेवाली होती है पुरुष सदा निर्दोष है परंतु दृश्यके संयोगसे बंधन और मोक्षको पाता है जब संतोष होता है तबही पुरुष निर्बंधन हो जाता है ॥

दो०-जैसे सेवक भूपके, हार जीतको पाइ ।
नाम होत है भूपको, सेना कहीं न जाइ ॥

सो०-तैसे मोक्ष अरु बंध, होत बुद्धिकों पुरुष नाहिं ।
पुरुष सदा निर्बंध, नाम होत धीपति भये ॥
बुद्धि मोह सविकार, बद्ध कहावत पुरुष तब ।
मोक्ष होत निरधार, ज्ञान होत जब बुद्धिमें ॥

अर्थ-जैसे युद्धमें सेनाकी हार जीत होनेसे वह हार जित राजाकीही कहाती है

सेनाकी हारजीत कहनेमें नहीं आती तैसेही बंध और मोक्ष बुद्धिको होता है पुरुषको नहीं होता परंतु बुद्धिका राजा पुरुषके होनेसे पुरुषही बंध और मोक्ष कहाता है जब बुद्धि विकार जो रजोगुण तमोगुणकृत विषय है उनमें मोहित होती है तब पुरुष बद्ध कहा जाता है और जब केवल सतोगुणी ज्ञानका प्रकाश बुद्धिमें होता है तब पुरुष मोक्ष कहा जाता है ॥ १८ ॥

विशेषाविशेषलिङ्गमात्राऽलिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥१९॥

दो०–विशेष और अविशेष पुनि, लिंग अलिंग सुचार ।
पूर्वक कथित सब गुणनके, ते परिणाम विचार ॥

अर्थ–विशेष १ अविशेष २, लिंग ३, अलिंग ४, यह चार रूप जो तीनों गुणोंके कहे गये हैं येही गुण परिणाम कहाते हैं ॥

भा.चौ-अब सब कहत त्रिगुण परिणामा।सुनतहि मिटत सकल दुखसामा
विशेष अरु अविशेष सलिंगा । गुण परिणाम चतुर्थ अलिंगा ॥
पंच भूत इन्द्रिय एकादश । सृष्ट क्रिया व्योपार कार्य अस ॥
यह षोडश परिणाम विशेषा । अहंकार तन्मात्र सुवेषा ॥
षट परिणाम जान अविशेषा । शांति घोर मूढ नहिं लेशा ॥
सबते प्रथम होत जाहीसों । संज्ञालिंगमात्र ताहीसों ॥
महततत्व संज्ञा समुदाई । कहत अलिंग प्रकृति मुनि गाई ॥
यह सब मायाकर परिवारा । दर्शन सांख्य कह्यो विस्तारा ॥
ताके भेद चार और वीसा । मायारहित पुरुष पच ईसा ॥
प्रकृति महान पंच तन्मात्रा । पंच भूत इन्द्रिय दश यात्रा ॥
अहंकार मन यह चौवीसा । सांख्यशास्त्रमें वर्ण मुनीशा ॥
सब हम दृश्य कह्यो समुदाई । द्रष्टा लक्ष मनो मनलाई ॥

सो०–द्रष्टा है अति शुद्ध, यद्यपि देखत बुद्धि सम ।
भोगति भोगहि बुद्धि, भोक्ता मानत स्वयमही ॥
आत्मा जानहु भिन्न, है नहिं बुद्धिस्वरूप सो ।
पुरुष ज्ञान अवछिन्न, बुद्धिविषय सुख दुख कहत ॥

अर्थ–अब तीनों गुणोंके परिणामोंको कहते हैं जिनके सुननेसे संपूर्ण दुःखोंकी सामा मिट जाती है विशेष अविशेष सलिंग और अलिंग ये चार परिणाम गुणोंके होते हैं पांच भूत और ग्यारह इन्द्रियां जो सृष्टिके कार्यव्यवहार हैं इन सोलहको विशेष परिणाम कहते हैं पांच तन्मात्रा और छठा अहंकार ये छः अविशेष परिणाम हैं इनमें शांति घोर मूढका लेशभी नहीं होता प्रधान सबसे पहले होनेसे प्रधानकी संज्ञा लिंगमात्र है महत्तत्त्वकी संज्ञाके समुदायको प्रकृति कहते हैं उसी प्रकृतिकी अलिंगसंज्ञा है यह सब मायाका कुटुम्ब है इसका विस्तार सांख्यदर्शनमें कपिलदेवजीने किया है इसके २४ भेद हैं मायासे रहित पुरुष पचीसवां है वे सब ये हैं प्रकृति १, महत्तत्व २, शब्द ३, स्पर्श ४, रूप ५, रस ६, गंध ७, आकाश ८, वायु ९, अग्नि १०, जल ११, पृथिवी १२, कर्ण १३, नेत्र १४, नासिका १५, मुख १६, त्वचा १७, हस्त १८, पाद १९, गुदा २०, लिंग २१, वाक् २२, मन २३, अहंकार २४ और पचीसवां पुरुष सबसे भिन्न है सांख्यशास्त्रमें इसका वर्णन विशेषतासे किया गया है यह चारों गुण परिणाम हैं दृश्यको समझकरके कहा अब द्रष्टाके लक्षणोंको कहते हैं मन लगाके सुनो। यद्यपि द्रष्टा बुद्धिके समान अपनेको कर्त्ता भोक्ता जानता है परंतु वह न कर्ता है न भोक्ता है वह तो अत्यंत शुद्धस्वरूप है जो बुद्धि भोगोंको भोगती है अज्ञानवश अपनेको भोक्ता मान लेता है आत्मा बुद्धिसे भिन्न है बुद्धिस्वरूप आत्मा नहीं है क्योंकि पुरुष ज्ञानस्वरूप है बुद्धि अज्ञान और सुखदुःखका विषय है ॥ १९ ॥

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

दो०–दृशिधर्मनते रहित सो, द्रष्टा अतिहि विशुद्धि।
तदपि होत प्रतिबिम्बित, मुकुरधर्म जो बुद्धि॥

अर्थ–दृश्यके धर्मोंसे रहित द्रष्टा अत्यंत शुद्धस्वरूप है परंतु बुद्धिरूप दर्पणमें द्रष्टाकी परछांही अर्थात् प्रतिबिंब पडनेसे बुद्धिही पुरुषके समान प्रतीत होने लगती है ॥

भाष्य छन्द०–पुरुष ज्ञाता नित्य अव्यय ज्ञान चेतनरूपको।
अविवेक बुद्धी जाल फंस सो जान नहिं निज रूपको॥
मान कर्त्ता भोगता सुख दुःख धर्म अधर्मको।
कहत है हम कौन जैसो भोगि है फल कर्मको॥

अर्थ-पुरुष ज्ञाता नित्य अविनाशी ज्ञान और चैतन्यरूप है वह अविवेकरूप बुद्धिके जालमें फँसकर अपने रूपको भूल जाता है और जान नहीं सक्ता दुःख सुख धर्म अधर्मका कर्ता और भोक्ता अपनेको मानने लग जाता है और कहता है कि हमने जैसा कर्म किया है उसके फलका भोग करते हैं ॥ २० ॥

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

दो०-पुरुष भोक्ता कि निमित्त, दृश्य भोगकर रूप ।
भोग करत है पुरुष सब, दृश्य भोग अनुरूप ॥

अर्थ-पुरुष भोक्ताके लिये दृश्य भोग्यरूप है इसलिये पुरुष दृश्यरूप भोगोंको भोगनेसे दृश्यका आत्मा कहलाता है ॥

भा. छंद.-पुरुष कारण दृश्य आत्मा ज्ञानकर पहिचानियें ।
दृश्य जानो भोग्य सब तुम पुरुष भोक्ता मानियें ॥
यदपि मोक्ष कृतार्थ जनके दृश्य सब नाशत घने ।
तदपि दृश्य प्रधानरूपा अन्य जन प्रति रहैं बने ॥

अर्थ-पुरुष कारण और दृश्यका आत्मस्वरूप है दृश्य सब भोग्य अर्थात् भोग करने योग्य है और पुरुष भोग करनेवाला भोक्ता है यद्यपि मोक्ष और कृतार्थ पुरुषोंके दृश्य सब नाश हो जाते हैं तद्यपि मोक्ष और कृतार्थ पुरुषोंको छोडके अन्य पुरुषोंमें दृश्य बने रहते हैं सर्वथा दृश्यका नाश नहीं होता है ॥ २१ ॥

कृताथ प्रतिनष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ २२ ॥

दो०-दृश्य हेतु है भोगको, अरु अपवर्गहु जान ।
नष्ट दृश्य कृतार्थ जनते, दृश्य नष्ट नहिं मान ॥
ज्ञानीके दृशनाशते, दृश्य नाश नहिं होय ।
अज्ञानी जनके विषें, बनो रहत है तोय ॥

भा० दो०-अमित पुरुष संसारमें, तिनमें मुक्तिन केर ।
नाश दृश्यको होत है, योग न पावत फेर ॥

संसारी जे पुरुष हैं, मुक्ति न पावत सोइ ।
बनो रहत तिनके विषैं, दृश्य नाश नहिं होइ ॥

अर्थ-इस संसारमें अनेक पुरुष हैं उन सबमें मुक्तिपुरुषोंकाही दृश्य नाश होता है और फिर कभी दृश्यका संयोग नहीं होता और जो संसारी पुरुष हैं उनको मुक्ति प्राप्त नहीं होती क्योंकि उनमें दृश्य बना रहता है नाश नहीं होता इसलिये मोक्षकी इच्छा करनेवाला पुरुष दृश्यके नाशका यत्न करे ॥ २२ ॥

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥२३॥

दो०-बुद्धीको अरु पुरुषको, जो अनादि संयोग ।
अज्ञानीको भोग प्रद, मोक्षज्ञानके योग ॥
अज्ञानी वश दृश्यके, भूलत अपनो रूप ।
भोगत जगके भोग सब, परे रहत भवकूप ॥
ज्ञानी अपने ज्ञानसों, भोग त्यागि निज रूप ।
पहिचानत निज रूपको, पावत मोक्षस्वरूप ॥

अर्थ-बुद्धिका और पुरुषका जो अनादि संयोग है वही अज्ञानीको भोगका और ज्ञानीको मोक्षका सुख देता है अज्ञानी दृश्यके वश होनेसे अपने स्वरूपको भूलकर सांसारिक सब भोगोंको भोगते हैं और इस जगद्रूप कूपमें पडे रहते हैं और ज्ञानी अपने ज्ञानके प्रतापसे भोगोंको त्यागकर अपने स्वरूपको जान लेनेसे मोक्षको पालेते हैं ॥

भा.चौ.-दृश्य अरु पुरुष शक्ति संयोगा । कारण सत्य भोग्य अरु भोगा ॥
दृश्यशक्ति जो भोगन योगा । पुरुषशक्ति भोगत सब भोगा ॥
भोक्ता पुरुष भोग्य परधाना । विन संयोग बनत नहिं कामा ॥
पुरुष प्रकृति संयोग होत जब । भोक्ता भोग्य कहावत हैं तब ॥
दोनों शक्ति मिले संयोगा । अनमिल चेतन भोग्य न भोगा ॥
तिहि कारण इन कर संयोगा । पावत शक्तिरूप सब भोगा ॥

अर्थ-दृश्य शक्ति और पुरुषशक्तिका संयोग जो दोनोंके स्वरूपोंकी प्राप्तिका कारण है भोग्य और भोक्तारूपसे जानो दृश्यशक्ति भोग्यका नाम है और पुरुषशक्ति

भोक्ताका नाम है पुरुषका नाम भोक्ता और प्रधानका नाम भोग्य है इन दोनोंके संयोगसेही दोनोंके स्वरूपोंकी प्राप्ति होती है पुरुष और प्रकृतिका जब संयोग होता है तब इन दोनोंका नाम भोक्ता और भोग्य कहा जाता है इन दोनों शक्तिके मिलनेका नाम संयोग है अनमिल रहनेसे भोक्ता व भोग्य नहीं कहाते इसलिये इनके संयोगसे शक्ति अनुकूल भोग प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

दो०-दृश्य पुरुष संयोग कर, हेतु अविद्या जान ।
ज्ञानप्राप्तिते होत है, तिहि संयोग विहान ॥

अर्थ-दृश्य और पुरुषके संयोगका कारण अविद्या है ज्ञानके प्राप्त हो जानेसे उस संयोगका नाश हो जाता है ॥

भा.चौ.-तिहि संयोगकर हेतु अविद्या । मिथ्याज्ञान विपर्य अबुध्या ॥
अशुचि माहि शुचि मानत जोई।अनआत्मा आत्मा कर सोई ॥
दुखको सुख अनित्यको नित्या । लक्षण जान बुद्धिविपरित्या ॥
रूप अविद्या जानहु भाई । ताहि तजे संयोग विहाई ॥

अर्थ-दृश्य और पुरुषके संयोगका कारण अविद्या है मिथ्या ज्ञान और बुद्धिकी विपर्ययता अविद्याका रूप है और अशुचिमें शुचि मानना और अनात्माको आत्मा जानना दुखको सुख और अनित्यको नित्य जानना अविद्याका लक्षण है ये अविद्याके रूप हैं इनको त्याग देनेसे दृश्य और पुरुषके संयोगका अभाव हो जाता है ॥ २४ ॥

तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥

दोहा०-पुनि अज्ञान अभावते, हान होत संयोग ।
हानि ताहि पहिचानिये, केवल आत्मसुभोग ॥

अर्थ-अज्ञानके अर्थात् अविद्याके अभावसे संयोगका अभाव होता है इसीको हानि कहते हैं इस दुःखके नाशसे केवल मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है ॥

भा० दो०-अज्ञ वासनासहित जे, होत प्रकृतिमें लीन ।
सतगुणके उत्पतिसमय, होत रहत अतिछीन ॥

सो०—चितको लय जब होय, पावत मोक्षस्वरूपकहँ ।
अन्य उपाय न कोय, साधन पर वैराग्य विन ॥
अज्ञानीको बंध, विज्ञानीको मोक्ष है ।
बुद्धी कारण फंध, पावत दोउ संयोगते ॥

अर्थ—जो अज्ञानकी वासनासहित प्रकृतिमें लीन होते हैं उनकी सत्वगुणकी उत्पत्तिसमयमें क्षीणता होती रहती है जब चित्तका लय हो जाता है तब मोक्षरूप पाता है सो इस मोक्षका परवैराग्यके सिवाय अन्य उपाय कोई नहीं है अज्ञानीको बंधन होता है विज्ञानीको मोक्ष प्राप्त होता है यह अज्ञान बुद्धिको फंदेमें डालनेका कारण है सो दृश्य पुरुषके संयोगसे होता है यहांतक हानको कहके अब हानिउपायको कहते हैं ॥ २५ ॥

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

दो०—ज्ञानविपर्ययरहित जो, हुइ विवेक निज रूप ।
हानयत्न मुनिवर कहत, मानहु ज्ञान स्वरूप ॥

अर्थ—विपरीत ज्ञानको छोडके जो अपने निज रूपका ज्ञान हो जाना वही हानिका उपाय है ॥

भा० दो०—नाश अविद्याके भये, होत अभाव संयोग ।
हान होत सब दुःखकी, चेतन मुक्ती योग ॥

छंद—पुरुष अपने रूपसे है शुद्ध मोक्षस्वरूप सो ।
पर अविद्या दृश्यके वश पाव बंधन दुःखसो ॥
हुइ अविद्या अभावसे संयोग दृशिको नाश है ।
दृश्यको संयोग दुख सो पूर्ण भवकी त्रास है ॥
रहित जो संयोगते सो पुरुष मोक्षस्वरूपसे ।
परिणाम दुखको टारकर कैवल्य राजत भूपसे ॥
हेय अरु हेयहेतुको और हानिको वर्णन कियो ।
अब अगाडी कहत हानोपाय श्रवणनपुट पियो ॥

दो०-विवेक ख्याति दृढ होत जब, तब संयोग विनाश ।
इहि कारणते कहत मुनि, हान उपाय प्रकाश ॥

अर्थ-अविद्याके नाश होनेसे संयोग नाश होता है संयोगके नाशसे सब दुःखोंकी हानि होती है दुखोंकी हानिसे चैतन्यपुरुष मुक्तिके योग्य हो जाता है पुरुष अपने रूपसे शुद्ध और मोक्षरूप है परंतु अविद्याके वशमें पडके दुःख और बंधनको पाता है अविद्याके अभाव होनेसे संयोगकाभी अभाव होता है दृश्यका और पुरुषका संयोगही पूर्ण दुःख और जन्ममरणकी त्रासरूप है जो पुरुष दृश्यके संयोगसे रहित है वह मोक्षरूपही है वह परिणामदुःखोंसे छूटकर कैवल्य मोक्षका भोग करनेको राजाके समान शोभित होता है यह हेय अर्थात् त्याग करने योग्य दुःख और दुःखोंका कारण और दुखोंकी निवृत्तिका वर्णन किया गया अब आगे दुःखोंकी निवृत्तिका उपाय वर्णन किया जाता है उसको सुनो जब विवेकख्याति अर्थात् ज्ञान दृढ होता है तब संयोगका नाश होता है इसलिये महर्षि क्लेशनिवृत्तिके उपायको कहते हैं ॥

चौ०-करि विचार देखहु मनमांही । दृश्य बुद्धिते भिन्न सदाही ॥
ज्ञानरूप सब रहित विकारा । नाम विवेक ख्याति विस्तारा ॥
मिथ्याज्ञान रहित जब होई । विवेक ख्याति कहावत सोई ॥
तासे उपजत पर वैरागा । होत विरोध वृत्ति चित लागा ॥
सबही क्लेश नाश हुइ जांही । हान उपाय कह्यो मुनि गाई ॥
जो कहुँ उपजहि तास संदेहा । बुद्धिरहित चित जड़ कर गेहा ॥
बुद्धिविहीन पुरुष कस होई । बुद्धि सहित सो चेतन सोई ॥
उत्तर सुनहु सकल मनलाई । समझत मिटहि सकल दुचिताई ॥

दो०-बुद्धि अहै त्रिगुणात्मिका, सत रज तम गुण जान ।
रज तम भोग और मोह है, सतविवेक अनुमान ॥
बुद्धी तीन प्रकारकी, रज तम मिथ्या ज्ञान ।
तिहि त्यागतही होत है, बुद्धी सत्वप्रधान ॥

चौ०-सत्वप्रधान बुद्धि है जोई । ताते पुरुष रहित नहिं होई ॥
रज तम बुद्धि मोह अरु भोगा । त्याज्य कह्यो इनकर संयोगा ॥

पुरुष निरंतर ज्ञानशक्तिमय । होत न दोष पुरुष चेतनवय ॥
मोक्षरूप महज्ञान शक्ति जो । रहत सर्वदा नशत नहीं तो ॥
केवल शब्दभाव विन जाने । होत महाभ्रम विन पहिचाने ॥
बुद्धिरहित तुम पुरुष न जानो । रजतमहीन कह्यो मम मानो ॥

अर्थ-विचारपूर्वक देखो पुरुष दृश्य बुद्धिसे सदा भिन्न है और ज्ञानस्वरूप सर्व विकारोंसे और मिथ्याज्ञानसे रहित विवेकख्याति है उससे परवैराग्य प्राप्त होता है और सर्व चित्तकी वृत्तियोंके निरोधसे क्लेशोंका नाश हो जाता है इसीको महर्षि हानका उपाय कहते हैं यदि कहीं ऐसा संदेह हो कि बुद्धिसे रहित चित्त जडसमान ठहरेगा बुद्धिके विना पुरुष चेतन नहीं हो सक्ता बुद्धिसंयोगसेही चेतन प्रतीत होता है तो इसके उत्तरको सुनो जिससे तुम्हारा चित्तका दुश्चिंतन मिट जावे सुनो बुद्धि सत्व रजस तमस भेदसे त्रिगुणात्मिका है रजस तमस भोग और मोहका रूप है औ सत्वगुण पूर्ण विवेक जानना चाहिये सो इन तीनों भेदोंमेंसे रजोगुणरूपी भोग और तमोगुणरूपी मोहको त्यागकर केवल सतोगुणी विवेकरूप बुद्धिका ग्रहण है सत्वप्रधान बुद्धिसे पुरुष कभी रहित नहीं होता रजस तमस भोगमोहरूप बुद्धिका त्याग कहा है पुरुष तो निरंतर ज्ञानशक्तिमय है पुरुषका चैतन्यतामें दोष नहीं आता मोक्षरूपमें ज्ञान शक्ति सर्वदा रहती है उसका नाश नहीं होता केवल शब्द जानकर भाव न जाननेसे भ्रम होता है सो तुम बुद्धिसे रहित पुरुषको न जानो हमने तो रज तम भोग मोहसे रहित होनेको कहा है यह माननीय है ॥ २६ ॥

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥

दो०-ता विवेकअख्यातिकी, प्रज्ञाभूमी सात ।
प्रान्तभूमिहू जानिये, तिनहि गनावत भ्रात ॥

अर्थ-विवेकी पुरुषकी विवेकबुद्धिकी सात प्रकारकी अंत अवस्था होती है तिनको गिनाते हैं ॥

भाष्य० दो०-हेय अरु हेयहेतु है, संप्रज्ञात तृतीय ।
चौथी ख्यातिविवेक है, मुक्तिस्वरूप सुधीय ॥

चौ०-अब उत्तरकी तीनों भूमी । चित्त विमुक्तिरूप गति घूमी ॥
भोग त्यागकर मुक्ति विधाना । द्वितीय अविद्या नाश सिराना ॥

विजय कियेते गुणसंबंधा । होय रहित तिनसो निरबंधा ॥
निर्मल मुक्तिरूप हुइ जाई । सातों रूप कहे हम गाई ॥

अर्थ-हेय १, हेयहेतु २, संप्रज्ञात ३, विवेकख्याति ४, यह चार प्रकारकी बुद्धि मुक्ति देनेवाली हैं और उत्तर तीन भूमि चित्तकी मुक्तिरूप हैं भोगोंको त्यागकर मुक्तिका साधन करना १, दूसरी अविद्याके नाश होनेसे गुणसंबंधोंको जीत निर्बंध होना, तीसरी निर्मल मुक्तिरूप हो जाना यह सातों प्रज्ञाभूमि जाननी चाहिये ॥२७॥

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक-
ख्यातेः ॥ २८ ॥

दो०-योगअंग साधन किये, अशुची सब मिट जात ।
विवेकख्यातिको पायकर, ज्ञानप्रदीप दिखात ॥

अर्थ-योगके अंगोंका साधन करनेसे सब अपवित्रताका नाश हो जाता है और विवेकख्यातिके उत्पन्न होनेसे ज्ञान प्रदीप्त होता है ॥

भा.चौ.-विन साधनके सिधि नहिं पावत । ताते साधन वर्ण सुनावत ॥
योग अंग जो साधन करई । होत अशुचि क्षय पाप न हरई ॥
अशुचि नाशते दीपित ज्ञाना । तथा विवेक ख्याति अनुमाना ॥
विवेकख्यातिते अशुचि वियोगा । जैसे विटप कुठार संयोगा ॥

अर्थ-विना साधनके सिद्धि प्राप्ति नहीं होती इसलिये अब साधनोंका कथन किया जाता है योगके अंगोंका जो साधन करता है उसकी अशुचि नाश होकर पाप नष्ट हो जाते हैं अशुचि नाश होनेसेज्ञा नदीप्त हो जाता है और विवेकख्यातिका उदय होता है उस विवेकख्यातिसे अशुचि ऐसे नाश हो जाती है जैसे कुठारके संयोगसे वृक्षका नाश हो जाता है ॥ २८ ॥

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-
ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

सो०-यम नियमासन साधि, प्राणायाम प्रतिहार अरु ।
धारण ध्यान समाधि, अष्ट कहे अंग योगके ॥

अर्थ–यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७, समाधि ८ ये आठ योगके अंग हैं ॥

भा. दो.–आठ अंग हैं योगके, यम नियमासन साधि ।
प्राणायाम प्रतिहार अरु, धारणा ध्यान समाधि ॥

अर्थ–आठ अंग योगके हैं यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५ धारणा ६, ध्यान ७, समाधि ८ ॥ २९ ॥

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ ३० ॥

दो०–अहिंसा सत्य आस्तेय पुनि, ब्रह्मचर्य जिय जान ।
अपरिग्रह सब पांच मिल, यमस्वरूप पहिचान ॥

अर्थ–अहिंसा १, सत्य २, आस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५ ये पांचों मिलकर यम कहाते हैं ॥

भा. दो.–सर्व देश सब कालमें, वध और वैर न होय ।
जबहि अहिंसा जानिये, धर्म सत्य है सोय ॥

छंद–मन तथा इन्द्रीनते जो होत ज्ञान अभर्म है ।
छलरहित छलहीन बोलत कहत सत्य सुधर्म है ॥
अस सत्य बोलत होत अनहित देत परको ताप है ।
होत ऐसे सत्य भाषत महा अधरम पाप है ॥
विना आज्ञा धनीके धन हरत नहिं अन्यायसो ।
गुप्तमें मनमांहि इच्छा होत नहिं धन पापसो ॥
आस्तेय याको नाम है सुन लेहु अस मुनिवर कहै ।
तेहिं वश कर लिंग इन्द्री काम अति कसकर गहैं ॥

सो०–ब्रह्मचर्य अस नाम, वर्णन जिहिं पूरव कियो ।
साधनते विश्राम, चित नहिं चंचलता गहत ॥

दो०-जिहि पदार्थमें दोष लखि, राग बढावत जोइ ।
इच्छा तिनमें करत नहिं, मान परिग्रह सोइ ॥
अपरिग्रह यह जानिये, भेदसहित सब गाय ।
लक्षण पांचों यमनके, कहे सकल समुझाय ॥

अर्थ-सर्व देश और सर्व कालमें वध और वैरकी इच्छा न होना अहिंसा धर्म कहाता है मन और इन्द्रियोंके द्वारा जो निर्भ्रम ज्ञान हो छलरहित उसको वैसाही जानना मानना कहना सत्य कहाता है जो सत्य परका अनहित करनेवाला और ताप देनेवाला हो उस ऐसे सत्य बोलनेसे अधर्म और पापभागी होता है विना आज्ञा धनीके जो अन्यायसे किसीका धन नहीं लेते और गुप्तमेंभी अन्यायसे धन पानेकी इच्छा भी नहीं करते यह विना आज्ञा धनीके धनकी अन्याय गुप्त और प्रकटमें इच्छाकाभी न होनेका नाम आस्तेय है लिंगेंद्रियको वश कर कामदेवका रोकना ब्रह्मचर्य कहाता है इसको प्रथम कह चुके हैं इसके साधनसे विश्राम और चित्त निश्चल होता है जो पदार्थ रागको बढाता है उसको दोषरूप और परिग्रहरूप जान उनमें इच्छाका न करना अपरिग्रह जानना चाहिये ये पांचों यमके भेद लक्षणोंसहित समझकर कहे गये हैं ॥ ३० ॥

एत जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥ ३१ ॥

सो०-अनहिंसादिक पांच, जाति देश और काल विन ।
समयरहित यह पांच, सार्वभौम और महाव्रत ॥

अर्थ-अहिंसा आदिक पांचों यम जाति देश काल और समयसे रहित होनेसे सार्वभौम महाव्रत कहाते हैं ॥

भा.चौ.-जाति देश और कालसमय जो। इनते रहित अहिंसादिक सो ॥
सार्वभूमि पालन यह धर्मा । नाम महाव्रत परम सुकर्मा ॥
शौच और संतोष तपस्या । वेद पठन स्वाध्याय समस्या ॥
पंचम ईश्वर कर प्रणिधाना । पांचों नियम कहत कर गाना ॥

अर्थ-जाति देश काल समयसे रहित अहिंसादिक पांच नियमोंकी सार्वभौम महा-

व्रत संज्ञा है । शौच संतोष तप स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान पांचों नियमोंका वर्णन आगे किया जाता है ॥ ३१ ॥

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ३२॥

दो०-शौच और संतोष तप, स्वाध्याय ईश्वरध्यान ।
पांच नियम मुनिवर कहे, मानहु सत्य प्रमान ॥

अर्थ-शौच १, संतोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५ ये पाच नियम जानने चाहिये ॥

भा.चौ.-शौच नाम पावनता जानो । अंतर बाह्य द्विधा अनुमानो ॥
रक्षा प्राणमात्रकी होई । इच्छा अधिक न राखहि जोई ॥
यह संतोष नाम कर गायो । ताको मुनिवर भेद बतायो ॥
छुधा पिपासा शीत उष्ण जो । चांद्रायण और कृच्छ्रव्रत जो॥

दो०-शुभ कर्मनते करत जो, मन और आतमा ताप ।
निर्मल करत सुवर्ण सम, इमि तप नाशत पाप ॥

छं०-प्रणव जप अरु मोक्ष विद्या पठन वेद अरु शास्त्रको ।
स्वाध्याय जानो नाम याको मुक्तदाता पात्रको ॥
सब कर्म और शुभ धर्म अर्पण ईशमें जो करत हैं ।
प्रणिधान कर चित स्वस्थ सकल कुतर्क मनते हरत हैं ॥

अर्थ-शौच अर्थात् पवित्रता यह अंतर और बाह्य भेदसे दो प्रकारकी है अपने प्राणमात्रकी रक्षाके निमित्त इच्छा होना अधिक न होना संतोष कहाता है भूख प्यास शीत उष्णका सहन कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रत करना शुभ कर्मोंकी आग्निमें मन और आत्माको तपाकर स्वर्णके समान निर्मल करनेका नाम तप है ॐकारका जप और मोक्षविद्या और वेदशास्त्रोंका पठन स्वाध्यायपात्रको मुक्तदाता है सर्व कर्मों और शुभधर्मोंके फलको ईश्वरमें अर्पण करना और ध्यान करके चित्तको स्वस्थ करना ईश्वरप्रणिधान कहाता है इससे संपूर्ण मनकी कुतर्कोंका नाश होता है ॥ ३२ ॥

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

दो०-जो संयम और नियमते, चित्त होय विपरीति ।
तो तिनके प्रतिपक्षकी, भावन कर चित जीति ॥

अर्थ-जो संयम और नियमके भारसे चित्त पीछेको हटे तो संयमानियमके प्रतिपक्षकी भावना अर्थात् विचार करके चित्तको जीते और हटने न देवे ॥

छं०-वितर्क बाधित होय मन तब करहि सत्य विचार सो ।
प्रतिपक्ष असिसों काट कुत्सित तर्क चितते रारसो ॥
अशुभमें जो लालसा अनुमोदिता सुखकारने ।
अस करत अपने लोभवश नहिं गनत परदुख दारुने ॥

अर्थ-जब मन कुतर्कोंसे बाधित होय तब सत्य विचारको काममें लावे और उस कुतर्कको प्रतिपक्षके विचाररूपी खड्गसे कुत्सित तर्कोंको चित्तसे काटकर हटा देवे अशुभ कर्मोंकी जो लालसा और प्रसन्नता सुखके निमित्त हुई है उसे इस विचारसे हटा देवे कि मैं अपने सुखके निमित्त दूसरेको दुःख देना चाहता हूं क्या मेरी इस करतूतिसे किसीको दुःख नहीं होगा यदि अपने सुखके निमित्त कोई मुझे दुःख देवे तो क्या मुझे दुःख न होगा फिर क्या कारण कि मैं अपने भलेके निमित्त किसीको दुःख दूं ॥ ३३ ॥

वितर्कहिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३४ ॥

दो०-लोभ क्रोध और मोह ये, न्यून्याधिक जस होत ॥
हिंसा आदि वितर्क तस, मृदु मध्यादि उदोत ॥
आप करे और अन्यकी, प्रेरणकृत जो होइ ।
प्रथम मान अनुमोदिता, दुख अनंत फल सोइ ॥
हिंसा आदिकसे कबहुँ, होत न सुख लवलेश ।
क्लेश रहत है सर्वदा, कर प्रतिपक्ष विशेष ॥

अर्थ-लोभ, क्रोध, मोह जैसे जैसे न्यून्याधिक होता है वैसेही हिंसादिक वितर्कभी मृदु मध्य अधिक होते रहते हैं प्रथम तो उन हिंसादिक वितर्कोंसे प्रसन्नता

है परन्तु उसका फल अनन्त दुःख होता है चाहे वह स्वयं करे या किसी अन्यकी प्रेरणासे करे हिंसा आदिकसे तो कभी लवलेशमात्रभी सुख नहीं होता सर्वदा क्लेश रहता है इससे इनकी निवृत्तिके लिये यत्न करे ॥

भा० दो०–हिंसा आदि वितर्क जो, कृत अनुमोदित लोभ ।
क्रोध मोह मृदु मध्य अधि, करत दुःखकृत छोभ ॥
कर विचार देखहि सुजन, हिंसादिक दुखखान ।
इन कर फल अज्ञान दुख, है अनंत जिय जान ॥
लोभ मोह और क्रोधवश, पर अनहित निज काज ।
अनुमोदित चित करत है, अंत बिगारे खाज ॥
दृढ कर सकल वितर्कको, त्याग करै सुखलागि ।
कर विचार त्यागन करै, रहै मोक्ष सुखपागि ॥

अर्थ–लोभ, क्रोध, मोहके वश हिंसा आदि वितर्कको करता है और अनुमोदित होता है जैसा मृदु मध्य अधिक लोभ क्रोध मोह होता है वैसाही दुःखभी होता है बुद्धिमान् विचारद्वारा देखे हिंसादिक दुःखकी खान है इनका फल अज्ञानकृत अनन्त दुःखही है लोभ क्रोध और मोहके वश होकर अपने सुखके लिये पराया अनहित करता है सो इससे पहले तो चित्त प्रसन्न होता है परन्तु अंतमें सब सुख नष्ट होकर अनन्त दुःख प्राप्त होता है सो जो सुख चाहे वह दृढ करके हिंसादिक सब वितर्कोंका विचारद्वारा त्यागके मोक्षसुखके यत्नमें लगा रहे ॥ ३४ ॥

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥

दो०–हिंसा जो नहिं करत हैं, तिनको फल अस होइ ।
तिनसों वैर न करहि कोउ, जगत जीव जो कोइ ॥

अर्थ–जो हिंसा नहीं करते हिंसा न करनेसे उनसे संसारमें जितने जीवमात्र हैं कोई वैर नहीं करता है यही अहिंसाका प्रतिष्ठित फल है ॥ ३५ ॥

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

दो०–सत्य वचन बोलत सदा, झूठ न चितमें लाव ।
अति अमोघ वाणी लहै, वचन सिद्धि कह पाव ॥

अर्थ-जो सदा सत्य वचन बोलता झूठको चित्तमेंभी नहीं आने देता उसका अति अमोघ वाणी और वचनकी सिद्धि प्राप्त होती है यह सत्यका प्रतिष्ठित फल है ॥ ३६ ॥

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

दो०-तनसों चोरी करहि नहिं, मनहूमें नहिं लाइ ।
जहँ चाहे तहँ मिलत हैं, स्वयं रत्न सब आइ ॥

अर्थ-जो तनसे चोरी नहीं करता और चोरीरूप कुकर्म मनमेंभी नहीं आने देता उसको जहां वह चाहे वहांही सब रत्न स्वयंही आकर प्राप्त हो जाते हैं यह अस्तेयका प्रतिष्ठित फल है ॥ ३७ ॥

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ ३८ ॥

दो०-ब्रह्मचर्य धारण किये, बल अरु वीर्य दृढाय ।
अणिमादिक सिद्धीनकों, सहज लेत सो पाय ॥

अर्थ-ब्रह्मचर्यके धारण करनेसे, बल और वीर्य दृढ होता है और अणिमादिक आठों सिद्धिको सहजही पा लेता है यह ब्रह्मचर्यका प्रतिष्ठित फल है ॥ ३८ ॥

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ॥ ३९ ॥

दो०-अपरिग्रह थिर होत जब, लहत ज्ञान निज कर्म ।
तीन कालके जन्मको, पावत ज्ञान अभर्म ॥

अर्थ-जब अपरिग्रह स्थिर होता है तब उसको अपने कर्मोंका ज्ञान होता है इससे वह भूत वर्तमान भविष्यत् तीनों कालके जन्मको जान लेता है यह अपरिग्रहका फल है ॥ ३९ ॥

शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

दो०-पूरण शुचिकी प्राप्तिते, होत घृणा निज काय ।
पर अंग शुद्ध अशुद्ध कर, कबहुँ न संग कराय ॥

अर्थ-पूर्ण शुचिकी प्राप्तिसे अपनेही शरीरमें घृणा होने लगती है पराया अंग कैसाही शुद्ध अशुद्ध हो वह कभी उसका संग नहीं करता यह शुचि बाह्य और अभ्यंतर भेदसे दो प्रकारकी है ॥

भा. चौ.-पूरण शुचि निश्चल जब होई। अपने अंग घृणा कर सोई ॥
अपने अंग घृणा जब होई। परसंसर्ग करै नहिं सोई ॥
अंतरीय शुचि करत बखाना। होत शुद्ध नाशत अज्ञाना ॥
तबही ज्ञान प्रकट हुइ जाई। पूरण शुचि जानहु तब पाई ॥

अर्थ-जब पूर्ण शुचि निश्चल हो जाती है तब अपनेही अंगमें घृणा उत्पन्न कर लेता है जब अपने अंगमें घृणा हो जाती है तब अन्यका संसर्गभी वह नहीं करता यह बाह्य शुचिका लक्षण है अन्तरीय शुचि जब प्राप्त होती है तब अज्ञान और अज्ञानके कार्य नष्ट होके ज्ञानका प्रकाश हो जाता है इसीको पूर्ण शुचि कहते हैं ॥४०॥

सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयो-
ग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥

दो०-मैत्रियादिते होत है, रागादिककी हानि।
रागहानिते होत पुनि, सत्वशुद्धि जिय जानि ॥
सत्वशुद्धिते स्वच्छता, चित्त स्थितहू जान
चित्तकी स्थिरता भये, इन्द्रिय सब वश मान।
इन्द्रियके वशिकारते, होत योग्यता पर्म।
आत्माको दर्शन करत, पुनि लहत कछु शर्म ॥

अर्थ-मैत्री आदिकसे रागादिकका नाश होता है, रागनाश होनेसे सत्वगुणकी शुद्धता होती है सत्वशुद्धिसे स्वच्छता और चित्त स्थिर होता है, चित्तके स्थिर होनेसे इन्द्रियां वश हो जाती हैं, इंद्रियोंके वश होनेसे योग्यता प्राप्त होती है योग्यतासे आत्माका दर्शन होता है फिर कुछभी क्लेश नहीं रहता ॥

भाष्य दो०-सत्वशुद्धि और इन्द्रिजय, मन प्रसन्न जब होइ।
आत्मज्ञानके योगते, अव्यय सुख लह सोइ ॥

अर्थ—सत्वकी शुद्धि और इन्द्रियोंकी विजयसे मन प्रसन्न होता है मनकी प्रसन्नतासे आत्मज्ञानद्वारा अक्षय सुखको पाता है ॥ ४१ ॥

संतोषादनुत्तम सुखलाभः ॥ ४२ ॥

दो०—होत सकल संतोषते, अति उत्तम सुख जोइ ।
प्राप्त होत है बिनहि श्रम, संशय करो न कोइ ॥

अर्थ—संतोषसे अति उत्तम सुख विनाही श्रम प्राप्त हो जाता है इसमें संशय नहीं है ॥

भाष्य चौ०—पूर्ण होत संतोष जब, अति उत्तम सुख लेत ।
नाश होत तृष्णा दुखद, कबहुँ दुःख नहिं देत ॥

अर्थ—जब पूर्ण संतोष हो जाता है तब अति उत्तम सुख पाता है और दुखदाई तृष्णाका नाश होकर कभी दुःख नहीं देती है ॥ ४२ ॥

कायेन्द्रियसिद्धिरशुचिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥

दो०—तपते रज तम अशुचि सब, सहज होत है दूर ।
काया और इन्द्रीनकी, सिद्धि पाय भरपूर ॥

अर्थ—तपस्यासे रजोगुण तमोगुणी अशुचि सहजमें दूर होकर काया और इन्द्रियोंकी पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है ॥

भाष्य दो०—तपते नाशत अशुचिके, प्राप्त सिद्धि अणिमादि ।
शारीरिक इन्द्रियनकी, दूर दृष्टि श्रवणादि ॥

अर्थ—तपस्यासे अशुचिका नाश होकर अणिमादिक सिद्धि और शारीरिक और इन्द्रियादिककी सिद्धि दूरदृष्टि दूरश्रवणभी प्राप्त हो जाता है ॥ ४३ ॥

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ ४४ ॥

दो०—स्वाध्यायकी पूर्णता, इष्ट देवको देखि ।
हुई अभीष्टहु सिद्धि सब, देव आप तिहि पेखि ॥

अर्थ–स्वाध्यायकी पूर्णतासे इष्टदेवका दर्शन और अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होता है और देवता आपही उसपर कृपा करता है ॥

भाष्य छंद०–स्वाध्यायते जप मंत्र ईश्वर ध्यान जे नर करत हैं ।
होत दर्शन देवता निज इष्ट कह अनुसरत हैं ॥
मंत्र जानो प्रणव जाको आतमा निज देवको ।
आतमा परसादते तब जीव पावत मुक्तिको ॥

अर्थ–स्वाध्याय वेदादिका पठन और मंत्रका जप और ईश्वरका ध्यान करनेसे अपने इष्टदेवका दर्शन होता है जिसका मंत्र प्रणव और नाम जिसका आत्मा है वह प्रसन्न होता है आत्माके प्रसन्न होनेसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

दो०–ईश्वरके प्रणिधानते, होत समाधी सिद्ध ।
संप्रज्ञात समाधिकी, लगी रहत सब रिद्ध ॥

अर्थ–ईश्वरके प्रणिधानसे समाधि सिद्ध होती है और संप्रज्ञातसमाधिकी संपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥

स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

दो०–स्थिर सुख जासों मिलै, आसन ताको नाम ।
पद्मासन वीरासन, भद्रासन सुखधाम ॥

अर्थ–आसनसे स्थिर सुख प्राप्त होता है सुखदाई आसन कई प्रकारके होते हैं जैसे पद्मासन वीरासन भद्रासन आदि ॥ ४६ ॥

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

दो०–सहज चेष्टा देहकी, करत शेषसम काय ।
निश्चल करहि शरीर तब, आसन सिध हुइ जाय ॥

अर्थ–इस आसनजीत हो जानेसे काया ऐसी शिथिल और प्रयत्नहीन हो जाती है कि तनकभी नहीं चलती जैसी अनंत शेषजीकी काया निश्चल है अथवा अनंत जो परमेश्वर है उसमें निश्चल चित्त हो जाता है ॥ ४७ ॥

तती द्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

दो०—आसनकी सिद्धी लहे, द्वन्द्व करत नहिं घात ।
शीत उष्ण दुख सुख कछू, व्यापत नहिं तिहि गात ॥

अर्थ—आसनसिद्धि होनेसे सर्व द्वन्द्वोंका नाश होता है और शीत उष्ण दुःख सुखकी कुछ बाधा शरीरको नहीं होती तब आसनसिद्धि भयी जाननी चाहिये ॥

भा. दो०—आसनजित जब होत तब, मिटत सकल दुखद्वंद ।
शीत उष्ण बाधित नहीं, होत ध्यान स्वच्छंद ॥

अर्थ—आसनसिद्धि होनेसे संपूर्ण दुख और द्वंद्व व शीत उष्ण बाधित नहीं होते और निष्कंटक ध्यान लग जाता है ॥ ४८ ॥

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ४९

दो०—जब आसनजित होत तब, श्वास और प्रश्वास ।
गति अभाव तिहि होत है, प्राणायाम प्रकाश ॥

अर्थ—आसनजित होनेसे श्वास और प्रश्वासकी गतिका अभाव हो जाता है और प्राणायामका प्रकाश होता है ॥ ४९ ॥

बाह्याभ्यन्तरस्तंभवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परि-
दृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥

दो०—बाह्यवृत्ति अरु अंतर, स्तम्भवृत्ति जिय जान ।
प्राणायाम विभेद त्रय, लेहु तिने पहिचान ॥

अर्थ—बाह्यवृत्ति १, अंतर्वृत्ति २, स्तम्भवृत्ति ३ ये प्राणायामके तीन भेद हैं ॥

भाष्य सो०—रेचक वायूरोध, बाह्यवृत्तिं जानो सबै ।
पूरकको अवरोध, अंतरवृत्ती जानियें ॥
दोनों केर प्रभाव, स्तम्भवृत्ति है तीसरी ।
देशकालको पाव, संख्याते लघु दीर्घ है ॥

अर्थ–रेचक वायुके अवरोधका नाम बाह्यवृत्ति और पूरकवायुके अवरोधका नाम अंतर्वृत्ति और दोनोंके अवरोधको स्तंभवृत्ति कहते हैं । देशकाल और संख्यासे लघु और दीर्घ प्राणायाम हो जाता है ॥ ५० ॥

बाह्याभ्यंतरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

दो०–रेचक पूरक दोउनको, आक्षेपी जो कोइ ।
चौथो प्राणायाम सो, कुम्भक जानो सोइ ॥

अर्थ–रेचक पूरक दोनोंका आक्षेपी जो है उसका नाम कुंभक चौथा प्राणायाम है॥५१॥

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

दो०–प्राणायामप्रयोगते, होत विवेक प्रकाश ।
तब आवरण अज्ञान तम, सहज होत सब नाश ॥

अर्थ–प्राणायाम प्रयोगसे विवेक प्रकाश होता है तब अज्ञानरूपी आवरण सहजही नाश हो जाता है ॥

भा०दो०–ताते क्षीण होत अज्ञाना । जो आवरण मोह मद नाना ॥
ज्ञानदीप्त और आत्मप्रकाशा । प्राणायाम बंधकर नाशा ॥
संशय कछू न जामें जानो । जो फल कह्यो सत्य जिय मानो ॥
राग द्वेष सब क्लेश मिटाई । आत्मप्रकाश सुःख सरसाई ॥

अर्थ–इससे अज्ञान क्षीण होकर मोहमदमानरूपी आवरणका नाश होता है और ज्ञानदीप्त होनेसे आत्माका प्रकाश होता है और संपूर्ण बंधनोंका नाश होता है इसमें कुछ संशय नहीं है जो फल कहा है वह सत्य जानना चाहिये राग, द्वेष और क्लेशों-का नाश होनेसे आत्माके प्रकाशका अक्षय सुख होता है ॥ ५२ ॥

धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥

दो०–मन स्थिरकर हेतु है, प्राणायाम विशुद्ध ।
तिहि निश्चल कर धारणा, भ्रमत नहीं कहुँ बुद्धि ॥

अर्थ–मन स्थिरका कारण प्राणायाम है तिससे निश्चल धारणा होती है और फिर बुद्धि कही नहीं भ्रमती है ॥ ५३ ॥

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

दो०-इन्द्रिय अपने विषयसों, होत रहित अतिस्वच्छ ।
चितस्वरूप सम होत तब, प्रत्याहार प्रत्यक्ष ॥

अर्थ-जब इंद्रियां अपने २ विषयोंसे रहित होकर अतिस्वच्छ हो जाती हैं और तिनका चित्तस्वरूप हो जाता है तब प्रत्याहार प्रत्यक्ष भया जाननीय है ॥५४॥

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

दोहा-प्रत्याहार जब होत है, पूर्ण महाबलवान ।
इन्द्रिय सहजहि होत वश, यह निश्चय जिय जान ॥

अर्थ-जब प्रत्याहार पूर्ण होकर बलवान् होता है तब इन्द्रिय वश हो जाती है यह निश्चय है ॥

भाष्य दो०-इन्द्रिय जित जब होत चित, धारत प्रत्याहार ।
धर्मविरुद्ध न जाय चित, पावत ध्येयाकार ॥

अर्थ-जब इन्द्रियां वश हो जाती हैं और धारणा दृढ हो जाती है तब धर्मविरुद्ध चित्त कहींभी नहीं जाता ध्येयाकार हो जाता है ॥५५॥

दो०-श्रीपातंजलियोगको, साधनपाद द्वितीय ।
रामबकस पूरण कियो, तिहिं जाने दुख छीय ॥

अर्थ-श्रीपातंजलिमहर्षिप्रणीतयोगशास्त्रके साधनपादरूपभाषाभाष्यको पूर्ण किया जिसके जाननेसे सर्व दुःखोंका नाश होता है ॥

इति श्रीपतंजलियोगशास्त्रे भाषाभाष्ये श्रीमत्पंडितगुरूदयालस्यात्मजपंडित रामभक्तविरचिते साधनपादाद्वितीयः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ विभूतिपादतृतीयप्रारम्भः ।

सो०-विनय करों कर जोरि, सीस नाय मुनिवर चरण ।
पातंजलहि निहोरि, विभूतिपाद वर्णन करों ॥

देशबंधश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

दो०-एकदेशमें चित्तको, बंधन दृढ कर होइ ।
डिगहि नहीं तिहु कालमें, कहत धारणा सोइ ॥

अर्थ-एक देशमें चित्तका दृढपूर्वक ऐसा बंधन हो जानेका नाम धारणा है जो तीनों कालमें फिर वहांसे चित्त कहीं न डिगने पावे ॥

भाष्य दो०-हृदयकमल बिच चित्तको, कै मस्तकके देश ।
जिह्वा और नासाग्रमें, करहि धारणा शेष ॥
चंचलतासे रोककर, चित स्थिरता लाय ।
अर्थसहित जप प्रणवको, प्रभुमें चित्त लगाय ॥

सो०-एक देशमें चित्त, बंध कहावत धारणा ।
अचल होहि सब वृत्ति, डिगमिगाहि नहिं कतहुँ कोउ ॥

अर्थ-हृदयकमल मस्तक जिह्वा और नासाके अग्रमें निश्चल चित्त हो जानेका नाम धारणा है चित्तको चंचलतासे रोक स्थिरतापूर्वक अर्थसहित ओंकारके रूपको विचारता हुआ ईश्वरका ध्यान करे । जब एक देशमें चित्त बन्ध जावे और चित्तकी वृत्तियां निश्चल हो जावें और फिर चित्त तनकभी न डिगे उसका नाम धारणा है ॥१॥

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

दो०-जौन विषयकी धारणा, चितमें करहि बनाय ।
ताहि त्याग चित जाय नहिं, सो दृढ ध्यान कहाय ॥

अर्थ-जिस वस्तु और विषयकी धारणा चित्तमें की जाय उसको छोडके जब चित्त कहीं अन्त नहीं जाता उसमें चित्तका निश्चल हो जानेका नाम ध्यान है ॥

भाष्य छंद०—धारणाते ध्यान उपजत ध्येयमें चित मगन सो ।
अन्य विषयन त्यागकर मन ध्याव प्रभुपद लगनसो ॥
ध्यानहीमें ध्येय भासत भेद कछु नहिं रहत है ।
ध्यान ध्याता रूप सबको ध्येयसो लखि परत है ॥

अर्थ—धारणासे ध्यान होता है ध्येयमें चित्तका मगन हो जानेका नाम ध्यान है । सर्व विषयोंको छोडके अत्यन्त प्रीतिसे ध्येय जो ईश्वर है उसका ध्यान करे जब ध्यानद्वारा ध्येयका प्रत्यक्ष हो जावे भेदरहित हो जावे अर्थात् ध्यान ध्याता सब ध्येयाकारही भासित होने लगे इस भेदरहित ध्येयके भासित होनेका नाम ध्यान है ॥ २ ॥

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥

दो०—रहत भेद किंचित् नहीं, चित हुइ ध्येयाकार ।
लक्षण पूर्ण समाधिके, मुनिवर कहे विचार ॥

अर्थ—ध्यान और समाधिमें किंचित्भी भेद नहीं है ध्यानकेही अर्थके समान अर्थात ध्येयाकारही भासता है यही महर्षिने पूर्ण समाधिके लक्षण कहे हैं ॥ ३ ॥

त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

सो०—धारण ध्यान समाधि, तीनोंके संयोगकों ।
संयम नाम अबाधि, एक नाम ते ज्ञानत्रय ॥

अर्थ—धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनोंके संयोगका नाम संयम है एक संयमनामके कहनेसे धारणा ध्यान समाधि तीनोंका बोध होता है ॥ ४ ॥

तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥

दो०—संयमके जय होतही, प्रज्ञा करत प्रकाश ।
ताते दृढ संयम करै, होत सकल भ्रमनाश ॥

अर्थ—संयमके जय होनेसे बुद्धिमें प्रकाश उत्पन्न होता है इसलिये दृढपूर्वक संयम करना चाहिये जिससे भ्रमका नाश होय ॥ ५ ॥

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

सो०-संयमका संयोग, कराहि भूमि सवितर्कमें ।
प्रज्ञा होत निरोग, चित लागत वैराग्य तव ॥

अर्थ-तिस संयमका संप्रज्ञातकी सवितर्कादि चारों भूमियोंमें क्रमानुसार प्रथम सवितर्क फिर निर्वितर्क इसी प्रकार सविचार और निर्विचार भूमियोंमें संयम करे अर्थात संयमको जोरे इससे बुद्धि निर्मल होकर चित्त वैराग्यमें प्रवृत्ति होता है ॥

भा. चौ.-संयम संप्रज्ञात भूमिमें । कर विनियोग विराग शून्यमें ॥
सवितर्क निर्वितर्क विचारा । निर्विचार यह भूमि पसारा ॥
प्रथम स्थूलमांहि कर संयम । तदुपर सूक्ष्म भूमिकर संगम ॥
विन संयम स्थूल कराई । सूक्ष्म लक्ष नहिं वेध्यो जाई ॥

अर्थ-संप्रज्ञात वैराग्यकी सवितर्क निर्वितर्क सविचार और निर्विचार ४ भूमि हैं उनमें संयमको संयोग करे प्रथम स्थूल भूमियोंमें संयम करे फिर सूक्ष्म भूमियोंमें संयम करे विना स्थूल भूमियोंमें संयम किय सूक्ष्म लक्षको नहीं वेध सक्ता अर्थात सूक्ष्म पदार्थको नहीं जान सक्ता ॥ ६ ॥

त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

दो०-धारण ध्यान समाधित्रय, अंतरअंग सवीज ।
इन तीनोंके पूर्व यम, ते बहिरंग अवीज ॥

भा. चौ०-अंतरंग संयम समाधिके । हरण सकल दुखद्वंद्वव्याधिके ॥
पूरवके यम आदिक पांचहु । बहिरअंग सबीजके सांचहु ॥
असंप्रज्ञातयोगमें तेहू । बाह्य अग जानहु गति गेहू ॥
संप्रज्ञात सविचारा जानहु । निर्विचार पुनि योग बखानहु ॥

अर्थ-धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों सबीज समाधिके अंतरअङ्ग हैं इन तीनोंके पूर्वमें जो पांच यम कहे गये हैं वे सबीज समाधिके बाह्य अङ्ग हैं ये सबीज समाधिके धारणादि तीन अन्तरअङ्ग दुखद्वंद्व व्याधिके नाशक हैं और पूर्वकथित पांचों यम सबीज समाधिके बहिरङ्ग है सो असंप्रज्ञात योगमें धारणा ध्यान समाधि भी बाह्य अंग गिने जाते हैं संप्रज्ञानको सविचारा असंप्रज्ञातको निर्विचारा भी कहते हैं ॥ ७ ॥

तदपि बहिरंगं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

दो०–तदपि धारणा ध्यान अरु, पुनि समाधि ये तीन ।
बहिरंग निर्बीजके, कहत विवेकी चीन ॥

अर्थ–तबभी धारणा ध्यान समाधि ये तीनों निर्बीज समाधिके बहिरङ्ग हैं ऐसा विवेकी कहते हैं ॥ ८ ॥

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥ ९ ॥

दो०–व्युत्थानके संस्कार सब, होत व्यतीत निरोध ।
प्रकट होत संस्कार सब, जब निरोध कृत बोध ॥
यह परिणाम निरोधकर, वर्णो महामुनीश ।
चितसम्मेलन होत जब, जानहु विस्वा वीस ॥

अर्थ–चित्तकी वृत्तियोंके निरोध न होनेका नाम व्युत्थान है संप्रज्ञातयोगमेंभी पूर्णतः चित्तवृत्तियोंका निरोध न होनेसे इससे उसकी व्युत्थान दशाभी कही जाती है सो व्युत्थानदशाके सब संस्कारोंका नाश निरोध अवस्था जो असंप्रज्ञातयोगकी है उसमें हो जाता है सो निरोधसमाधि अर्थात् असंप्रज्ञातयोगमें व्युत्थानसंस्कारोंका क्षय और व्युत्थान अर्थात् संप्रज्ञातयोगमें संस्कारोंका उदय हो जाता है निरोधसंस्कार चित्तवृत्तियोंका निरोध होकर चित्तका निर्मल हो जाना निरोधका परिणाम कहाता है इसीको चित्तसम्मेलन कहते हैं ॥

भा. छन्द०–व्युत्थान और निरोध जो संस्कारवृत्ति प्रवृत्तिको ।
क्षय उदय जय होत तिहि क्षण नाम तैसी कृत्तिको ॥
व्युत्थानमें लय होत नाहीं चित्तकी वृत्ति महा ।
उठत है संस्कार तिनको रुकत नहिं मुनिवर कहा ॥
क्षय होत जब संस्कार सब व्युत्थानके जो कछु रहे ।
उदय होत निरोध तिहि क्षण योग चित वश कर रहे ॥
परिणामभोग निरोध जानो चित्तके संयोगते ।
प्रकृति और व्युत्थानको अवरोध मानो भोगते ॥

अर्थ-वृत्तियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके व्युत्थान और निरोध दो भेद हैं व्युत्थानकालमें संस्कारोंका उदय व निरोधकालमें संस्कारोंका क्षय होता रहता है व्युत्थानदशामें चित्तकी अपार वृत्तियोंका लय नहीं होता उनका संस्कार उठता रहता है रुकता नहीं है और जब निरोधकाल होता है तब सब संस्कारोंका क्षय होकर चित्त वश हो जाता है जब रुकी हुई चित्तवृत्तियोंका चित्तसे संयोग होता है उसको निरोधपरिणाम कहते हैं व्युत्थानमें प्रवृत्ति वृत्तियोंका भोगोंसे रुक जानेका नाम निरोधपरिणाम कहाता है ॥ ९ ॥

तस्य प्रशांतवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

दो०-हुइ निरोध संस्कारते, ताको शांति प्रवाह ।
पुनि न ग्रहत व्युत्थानचित, सदा रहत इक ठाह ॥

अर्थ-निरोधसंस्कारसे उस व्युत्थान संस्कारका प्रवाह शांत होकर चित्तकी स्थिति एकही स्थानपर होती है ॥ १० ॥

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

दो०-सम्प्रज्ञात समाधिमें, चितभ्रम नानाअर्थ ।
ताहि कहत सर्वार्थता, क्षयव्युत्थानसमर्थ ॥
उदय होत एकाग्रता, चितसर्वारथहीन ।
तब समाधिपरिणाम तुम, जानहु मुनि कह दीन ॥

अर्थ-सम्प्रज्ञातसमाधिमें चित्त नाना अर्थोंमें भ्रमता है उसको सर्वार्थता कहते हैं क्षय अर्थात् एकाग्रताका उदय होना यह संप्रज्ञातसमाधिका परिणाम है ॥

भाष्य दो०-संप्रज्ञातसमाधिमें, चितभ्रम नाना अर्थ ।
ताहि कहत सर्वार्थता, क्षयको होत समर्थ ॥

अर्थ-संप्रज्ञातसमाधिमें नाना अर्थोंमें चित्त ग्रसित रहता और एकाग्रतामें सर्वार्थका क्षय होता है यह अर्थोंका उदयका क्षयरूप सर्वार्थता और एकाग्रता चित्तसमाधिके परिणाम हैं ॥ ११ ॥

ततः पुनः शांतोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतायाः परिणामः ॥ १२ ॥

दो०—एकाग्रता समाधिमें, पुनि पुनि भासत सोइ ।
जाको ध्यायो चित्तमें, अन्य न भासत कोइ ॥

अर्थ—एकाग्रतासमाधिमें वारवार वही भासित होता है जिसका ध्यान किया गया हो समाधि छूट जानेपरभी अन्य पदार्थ भासित न होना यह चित्तकी एकाग्रताका परिणाम अर्थात् फल है ॥

भाष्य छं०—सर्वार्थशांती उदय दोऊ काल चित एकाग्रता ।
होत चित थिर ध्येयमें परिणाम पूर्ण समग्रता ॥
एकाग्रता परिणाम जानो तुल्य भूत भविष्यकी ।
जो ज्ञान पूरव भयो पुनि चितमांहि उद्यत ताहिकी ॥
शांति हुइ कर उदित तिनको तुलय चितमें भासि है ।
समाधिके पर्यंत तिनको विनहिं क्रम परकाश है ॥
एकाग्रता परिणामको सब कह्यो मुनिवर गायके ।
सो कह्यो हम समझाय तुम सन सुनहु चित्त लगायके ॥

अर्थ—सर्वार्थकी शांतिदशामें जब चित्तकी वृत्तियोंका क्षय होकर किसी ध्येयपदार्थमें चित्त लग जाता है और इस चित्तके ध्येयाकार हो जानेका नाम समाधि है जब समाधिकाल और समाधिके छूट जानेपरभी चित्त ध्येयाकारही बना रहे इस अवस्थाका नाम एकाग्रतापरिणाम है सो इस एकाग्रतापरिणामको हमने तुमसे कहा जैसा कि मुनिवर्यने कहा है यह चित्तकी एकाग्रताका फल है ॥ १२ ॥

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥

दो०—जैसे चितपरिणाम त्रय, तैसेहि भूतइन्द्रीय ।
धर्मलक्षण और आयुको, मानो अपने जीय ॥

अर्थ—जैसे चित्तके तीन परिणाम हैं वैसेही पञ्च भूत आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी और इन्द्रियेंभी धर्म, लक्षण, अवस्था तीन परिणाम होते हैं ॥

भाष्य दो०-जैसे चित परिणामको, वर्णन कीन मुनीश ।
जैसे पांचों भूत अरु, इन्द्रिय दसमे दीश ॥
धर्मलक्षणा युग्म है, तृतीय अवस्था जान ।
तीन भेद इनकर कहे, काल तीन अनुमान ॥
धर्मीकी जो शक्ति है, धर्म कहावत सोइ ।
शक्ती जामें रहत है, धर्मी मानो सोइ ॥
पूर्वधर्मके मिटतही, अन्य धर्म प्रकटात ।
बदलत दूजो धर्म जो, सो परिणाम कहात ॥

चौ०-जैसे पिंड धर्म मृतिकाको । नाश भये घट धर्म सु जाको ॥
तैसेही चितका व्युत्थाना । नाशतही निरोध ठहरना ॥
कार्य रूप और धर्मप्रमाना । कालभेद लक्षण परिणामा ॥
भूत और वर्तमान अनागत । काल तीन परिणाम लक्षमत ॥
इहि प्रकार व्युत्थानके माहीं । काल निरोध अनागत पाहीं ॥
वर्तमान जब होय निसेधा । होत भूत व्युत्थान सुबोधा ॥
कालनिरोध और व्युत्थाना । वर्तमान लक्षण जिय जाना ॥
वर्तमान संबंध अतीता । होत नवीन पुरातन मीता ॥

दो०-घट पट आदि पदार्थकी, तीन अवस्था जान ।
तैसेही दुर्बल सबल, होय निरोध व्युत्थान ॥
धर्मी जानो धर्मते, धर्मते लक्षण मान ।
लक्षणते पुनि होत है, सत्य अवस्था ज्ञान ॥
तीन कालमें एकरस, धर्मी तजे न वर्ण ।
धर्म पलट पुनि पुनि परत, ज्यों आभूषणस्वर्ण ॥

अर्थ-जैसे चित्तपरिणामको महर्षिने वर्णन किया है वैसेही पांचों भूत और दसों इन्द्रियोंमेंभी जानो धर्म, लक्षण, अवस्था यह तीन परिणाम और कालभेदसे तीन भेद जानने चाहिये जिसमें शक्ति होती है वह धर्मी कहाता है और धर्मीकी

शक्तिका नाम धर्म है पूर्वधर्मके मिट जानेपर जो अन्य धर्म प्रकट होता है वही परिणाम कहाता है जैसे पिंडधर्म मट्टीमें होता है जब पिंडधर्मके मिट जानेपर उस मृत्तिकाका घट बन जावे तब घटधर्म हो जानेका नाम परिणाम है इसी प्रकार जब चित्तका व्युत्थान धर्म नाश होकर निरोध धर्म प्राप्त हो जाता है तब उसको निरोध परिणाम कहते हैं इसीका नाम धर्मपरिणाम है कालभेदहीको लक्षणपरिणाम कहते हैं. भूत, वर्तमान, भविष्यत् ये तीन काल लक्षणपरिणाममें होते हैं धर्मका भविष्यत्-कालमें प्राप्त होना अनागतअध्वा और धर्मका वर्तमान होना वर्तमान अध्वा और धर्मका वर्तमानसे पहले हो जानेका नाम अतीतअध्वा कहाता है इसी प्रकार व्युत्थानमें निरोधका अनागत अध्वा और निरोधके वर्तमानमें व्युत्थानका अतीत अध्वा और व्युत्थान तथा निरोधके वर्तमानकालमें दोनोंका वर्तमान अध्वा होता है अध्वा कालका नाम है इसीका नाम लक्षणपरिणाम है वर्तमान और अतीतकालके संबंधसे घट आदिके नये पुराने होनेके ज्ञानका नाम अवस्थापरिणाम है इसी प्रकार निरोधलक्षणमें निरोधसंस्कार बलवान् और व्युत्थानसंस्कार पुराने तथा दुर्बल जानने चाहिये यह बलवान् व निर्बल होना अवस्थापरिणाम है धर्मीका धर्मसे धर्मोंका लक्षणसे लक्षणका अवस्थासे परिणाम होता है इस प्रकारसे तीन परिणाम जानने चाहिये तीनों कालमें धर्मी एकरस रहता है और धर्म बारबार बदला करता है जैसे स्वर्ण सदा एकरस रहता है परंतु धर्मरूप आभूषण उस स्वर्णके नाना प्रकारके बदलते रहते हैं ॥ १३ ॥

शांतोदितोऽव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥

सो०–तीन कालके माहि, धर्मी अनुगत धर्मके ।
कबहुँ न सो बिलगाहि, जैसे घटतें मृत्तिका ॥

अर्थ–तीनों कालमें धर्मी अपने धर्ममें बना रहता है कभी अलग नहीं होता जैसे घट आदिसे मृत्तिका अलग नहीं होती है वैसेही धर्मसे धर्मी अलग नहीं होता मृत्तिका धर्मी और घट धर्म है ॥

भा. चौ.-शांति उदित और अव्यपदेशा । तीन धर्म सामान्य विशेषा ॥
सब धर्मनमें जिहिं संबंधा । धर्मी नाम जान निरबंधा ॥
भूत और वर्तमान भविष्यत । रहत धर्मीके अन्वित ॥
जाते प्रकट होत सब धर्मा । धर्मी नाम रहित सब मर्मा ॥

अर्थ-शांत उदित और अव्यपदेश्य ये तीन प्रकारसे सामान्य विशेषरूपसे धर्मी धर्मका संयोगी है जिसका अपने सब धर्मोंमें संबंध हो उसे धर्मी जानना चाहिये शांतसे भूत उदितसे वर्तमान अव्यपदेश्यते भविष्यत् इन तीनों कालमें धर्म धर्मीमें मिला रहता है धर्मीसेही सर्व धर्म प्रकट होते हैं उसीका नाम भ्रमरहित धर्मी है जिससे अनेक धर्म उत्पन्न होकर वहभी अर्थात् धर्मीभी उन धर्मोंमें बना रहे॥ १४॥

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

दो०-क्रमकी जो है अन्यता, हेतु अन्य परिणाम ।
दृढ कर जानहु चित्तमें, दृष्टादृष्ट सुनाम ॥

अर्थ-क्रमका अन्य होनाही परिणामके अन्य होनेका कारण है चाहे वह दृष्ट हो चाहे अदृष्ट हो ॥

भा.चौ.-क्रमके अन्य भये परिणामा । होत अन्य यह हेतु ललामा ॥
सुवरणके आभूषण क्रमते । होत अनेक परिणाम यतनते ॥
कुंडल बाजूबंद सुहाये । सीसफूल कर कंकण गाये ॥
इहि प्रकार जो जाकर हेतु । उपजत क्रम अनुसार सुखेतु ॥

अर्थ-क्रमके अन्य होनेसे परिणामभी अन्य होता है इससे क्रमका अन्य होनाही परिणामके अन्य होनेका हेतु जानना चाहिये जैसे क्रमानुसार एक स्वर्णके अनेक आभूषण, कुंडल, बाजूबंद, सीसफूल करकंकण होते हैं इसी प्रकार जो जिसका कारण है वह अपने कारणसे उत्पन्न होता है इसी क्रमसे एक धर्मसे अनेक धर्म क्रमानुसार होनेसे क्रमही परिणाम अर्थात् फलका हेतु है ॥

छंद०-ज्ञात तिनको होत आगम न्याय और अनुमानते ।
परिणाम जान अदृष्टको तिहिं सप्तधा चितज्ञानते ॥
प्रथम जान निरोध दूजो कर्म त्रिय संस्कार सो ।
त्रिगुणते पुनि होत चौथो पंच जीवन प्राण सो ॥
षष्ठ चेष्टा कहत मुनिवर शक्ति सप्तमको गने ।
अनुमान द्वारा जान सब कह मान जो मुनिवर भने ॥

निरोध द्वारा रुकत वृत्ती कर्म दुख सुख भोगकी ।
संस्कार भासत स्मृतीते त्रिगुण चंचल योगकी ॥
श्वास और प्रश्वास जीवन क्रिया चेष्टा मानियें ।
स्थूलते अनुमान द्वारा सूक्ष्म शक्ती जानियें ॥

दो०—संयमते जब होत है, साक्षात परिणाम ।
धर्म लक्षण और आयु त्रय, करहिं चित्तमें ठाम ॥

अर्थ—दृष्ट अदृष्टका ज्ञान आगम न्याय और अनुमानसे होता है दृष्ट जैसे कामसुख आदि अदृष्ट परिणाम सात प्रकारका होता है निरोध १, कर्म २, संस्कार ३, चौथा त्रिगुणकृत चित्तकी चंचलता ४, जीवन जो श्वास प्रश्वास प्राणधारणसे ५, चेष्टा अर्थात् क्रिया ६, शक्ति अर्थात् कार्योंकी सूक्ष्म अवस्था चित्तका धर्म ७ इनको अनुमानद्वारा जानना चाहिये निरोधसे चित्तकी वृत्तियोंका अवरोध होता है दुःख सुखके होनेके कर्मका बोध स्मृतिसे संस्कारका बोध चित्तकी चंचलतासे त्रिगुणपरिणामका प्राणवायुके आवागवनसे जीवनका क्रियासे चेष्टाका स्थूलसे सूक्ष्म भासित होनेसे शक्तिका अनुमानद्वारा ज्ञान होता है संयम करनेसे परिणामका साक्षात्कार हो अर्थात् धर्मलक्षण अवस्थाका चित्तमें साक्षात्कार होता है ॥ १५ ॥

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥

दो०—धर्मलक्षणा आयुमें, संयम दृढ कर जोइ ।
भूत अनागत ज्ञानको, सहजहि पावत सोइ ॥

अर्थ—धर्मलक्षणा और अवस्था तीनों परिणामोंमें संयम करनेसे सहजमेंही अतीत अनागत अर्थात् भूत भविष्यत् कालका ज्ञान हो जाता है ॥

भाष्य दो०—परिणामत्रयके दर्शते, रज तम मल जरि जात ।
तब सतगुणके उदयते, तीनों काल दिखात ॥

अर्थ—तीनों परिणामके साक्षात्कार होनेसे रजोगुण तमोगुण रूप मल जर जाते हैं तब तीनों कालका ज्ञान हो जाता है ॥ १६ ॥

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

दो०-शब्द अर्थ और ज्ञानको, भावहेतु संकेत।
ताके भेदाभेदमें, संयम कर चित देत ॥
दृढकर संयमके किये, होत शब्दकर ज्ञान।
प्राणिमात्रके शब्दमें, होत अर्थको भान ॥

अर्थ-शब्द, अर्थ और ज्ञान और उनके भाव, हेतु, संकेतके भेदाभेदमें जो चित्तका संयम करते हैं उस संयमसे सर्व प्राणिमात्रके शब्द और उन शब्दोंके अर्थका ज्ञान होता है ॥ १७ ॥

संस्कारसाक्षात्कारणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

दो०-संस्कार संयम किये, साक्षात्कार प्रधान।
तबही पूरव जन्मकी, जाति होत सब भान ॥
जैसे जैगीषव्य ऋषि, साक्षात्कार संस्कार।
दस कल्पनकी योनि निज, जानी सुगम विचार ॥

अर्थ-जब संस्कारमें पूर्ण संयम हो जाता है तब पूर्व जन्मोंकी ज्ञातिका बोध होता है जैसे जैगीषव्यऋषिको संस्कार साक्षात् करनेसे दश कल्पोंकी अपनी पूर्व जन्मोंकी योनिका ज्ञान हो गया था ॥

भाष्य छंद-वासनाके ज्ञानसे उत्पन्न स्मृति हेतु जो।
पुनि अविद्या क्लेश धर्माधर्म आयू भोग जो ॥
पूर्वजन्मनिरोध जीवन धर्मकर चितमें वसे।
साक्षात कर इन सर्वको योगीश समरथता लसे ॥

अर्थ-वासनाके ज्ञानसे स्मृति हेतु उत्पन्न होता है और अविद्यादि क्लेशोंके हेतु धर्म अधर्म जाति आयु भोग पूर्वजन्मोंमें हुए निरोधशक्ति और जीवनधर्ममें होनेवाले जो संस्कार चित्तमें रहते हैं इन सबका साक्षात्कार करनेसे योगीको संस्कार साक्षात् करनेकी सामर्थ्य होती है इस प्रकार अपनी और अन्यकी जातिका ज्ञान योगीको होता है ॥ १८ ॥

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

दो०-परके चितकी वृत्तिमें, कर संयम चित साध ।
परके चितके ज्ञानको, पावत तब निर्बाध ॥

अर्थ-परके चित्तकी वृत्तियोंमें संयम करनेसे परके चित्तका निर्बाधित ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तंभे चक्षुःप्रकाशासंयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥ २० ॥

दो०-काया और स्वरूपमें, संयम दृढ कर होय ।
ताहि ग्रहणकी शक्ति जो, रोकहि मुनिवर सोय ॥
परको नेत्रप्रकाश जब, परत न योगी काय ।
नहिं देखत तब रूपको, अंतर्धान कहाय ॥

अर्थ-काया और स्वरूपमें दृढपूर्वक संयम करनेसे काया और रूपके ग्रहण करनेकी शक्तिको रोक लेय तब परके नेत्रका प्रकाश योगीको काय पर न पडनेसे अन्यको योगीका दर्शन नहीं होता इससे इसका नाम अंतर्धानशक्ति कहा जाता है ॥ २० ॥

न च सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥ २१ ॥

दो०-ज्ञान होत परचित्तको, परचित संयम देत ।
विषयन कर संयम नहीं, चित्त विषय नहिं लेत ॥
परचितमें संयम किये, होत ज्ञात परचित्त ।
विषयनके संयम भये, ज्ञानविषयकर नित्त ॥
कर आलंबनचित्त जिह, तिहँकर उपजत ज्ञान ।
चितते परचित ज्ञान लह, विषय विषयकर मान ॥

अर्थ-परचित्तमें संयम करनेसे परचित्तका ज्ञान होता है परचित्तके विषयोंमें संयमन करनेसे परचित्तके विषयोंका ज्ञान नहीं होता। परचित्तमें संयमसे परचित्तका ज्ञान होता है और परचित्तके विषयोंमें संयम करनेसे पराचित्तके विषयोंका ज्ञान होता है। इसका भाव यह है जिसको चित्त आलंबन अर्थात् संयम करता है उसीका

ज्ञान होता है पराचित्तमें संयम करनेसे पराचित्तका और परचित्तके विषयोंमें संयम करनेसे पराचित्तके विषयोंका ज्ञान होता है ॥ २१ ॥

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरांतज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥

दो०–सोपक्रम निरुपक्रम, कर्म कहे द्वै भांति ।
संयम तिनमें करत ही, अपनो मरण दिखात ॥
सोपक्रमते शीघ्रही, निरुपक्रमकर देर ।
अथवा तीन अरिष्टतें, मरणज्ञानको हेर ॥

अर्थ–सोपक्रम निरुपक्रम भेदसे कर्म दो प्रकारका होता है कर्ममें संयम करनेसे अपने मरणका ज्ञान होता है सोपक्रमसे शीघ्रता विदित होती है निरुपक्रमसे विलंब प्रतीत होता है अथवा अरिष्टसेभी मरणका बोध हो जाता है ॥

भा.चौ.-सोपक्रम निरुपक्रम कर्मा । कर्मभेद हम कहे अभर्मा ॥
जो कोउ कर संयम निज मनमें । होत ज्ञान निज मृतु कर तनमें ॥
अथवा ज्ञान अरिष्टते होई । ताको जान लेत सब कोई ॥
सोपक्रमकर फल अतिशीघ्रा । निरुपक्रम विलब कृत दीर्घा ॥

दो०–जैसे गीले वस्त्रकों, लेवे घाम सुखाय ।
सोपक्रम सो जानिये, सद्य सूखि सो जाय ॥
निरुपक्रम यह जानिये, भीज्यो वस्त्र लपेट ।
धरहि छांहमें सूखवे, सो विलंब कृति ठेट ॥

अर्थ–सोपक्रम निरुपक्रम भेदसे कर्म दो प्रकारका होता है सोपक्रमका अर्थ क्रमानुसार तथा यथाक्रम है और निरुपक्रमका अर्थ क्रमरहित तथा विपरीतक्रम है सो जो कोई कर्मोंमें संयम करता है उसे निज मृत्युका ज्ञान होता है अथवा अध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक तीन प्रकारके अरिष्टोंसेभी मरणज्ञान हो जाता है अध्यात्मिक जैसे कर्णछिद्रोंके बन्द करनेसे जो प्राणशब्द सुन परता है उसका न सुनना, आधिभौतिक जैसे यमदूत आदिक तथा अपने मृतकोंको देखना आधिदैविक अकस्मातही स्वर्ग तथा देवता आदिका दर्शन होना, सोपक्रममें संयमसे शीघ्र

ज्ञान होता है निरुपक्रममें संयम करनेसे विलंबमें ज्ञान होता है जैसे गीले वस्त्रको घाममें सुखानेसे वह वस्त्र जल्द सूख जाता है और उसी गीले वस्त्रको लपेटकर छांइमें रख देनेसे विलंबमें सूखता है इसी प्रकारसे सोपक्रममें संयमसे जल्द ज्ञान होता है निरुपक्रममें संयम करनेसे देर लगती है ॥ २२ ॥

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

दो०—मैत्री आदिकमें किये, संयम दृढकर साध।
बल बाढत ताको विपुल, मिटत सकल जगव्याधि ॥

अर्थ—मैत्री आदिक जो पूर्व कह चुके हैं उनमें संयम करनेसे बलकी वृद्धि होती है और सांसारिक वैर वैमनस्य दूर हो जाता है ॥

भा. दो.—मैत्री आदिक जे कहे, तिनमें संयम कीन।
बलकी प्राप्ती होत है, विन संयम बलहीन ॥

अर्थ—मैत्री आदिमें संयम करनेसे बल प्राप्त होता है विना संयमके बलहीन रहता है ॥ २३ ॥

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

दो०—बलमें संयमके किये, हस्तीसम बल होय।
गरुड़वायुबलमें करे, तिनसमही बल सोय ॥

अर्थ—बलमें संयमके करनेसे हाथीके समान बल होता है गरुड वायुबलमें संयम करनेसे उनहीके समान बल हो जाता है ॥ २४ ॥

प्रवृत्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्ट-ज्ञानम् ॥ २५ ॥

दो०—प्रथम पादमें जो कही, ज्योतिष्मती प्रवृत्ति।
ताको कर व्यवहार सब, सूक्षम भासत चित्त ॥

अर्थ—प्रथमपादमें जो ज्योतिष्मती प्रवृत्तिका वर्णन किया गया है उसमें संयमका व्यवहार करनेसे सूक्ष्म वस्तु भासित होती हैं ॥

भा. चौ०—जोतिष्मतीप्रवृत्तिप्रकाशा । तिहिंके प्रेरण विना प्रयासा ॥
अड छिपी वस्तूकर ज्ञाना । अथवा अवनि गढी अनुमाना ॥
अथवा दूर देशको ज्ञाना । मेरू आदि रसायन जाना ॥
अतिसूक्षम परिमाणु दिखाही । अतिप्रकाश रविकर सम भाई ॥

अर्थ—ज्योतिष्मती प्रवृत्तिकी प्रेरणासे आडमें छिपी अथवा पृथिवीमें गडी तथा पर्वतोंमें रसायन अतिसूक्ष्म परमाणुभी उसके सूर्यके समान प्रकाशमें दीखने लगते हैं २५॥

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ २६ ॥

दो०—सूरजमें संयम करत, भुवन ज्ञान त्रय होय ।
लोक चतुर्दश नरक सब, दीख परत जस जोय ॥

अर्थ—सूर्यमें संयम करनेसे तीनों लोक और चौदह भुवन और नरकादि सब दृष्टपथ हो जाते हैं ॥ २६ ॥

चंद्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

दो०—चंद्रामें संयम किये, होत व्यूहकर ज्ञान ।
जहँ जहँ तारा वसत है, लेत सबहि पहिचान ॥

अर्थ—चंद्रमामें संयम करनेसे ताराव्यूहका ज्ञान होता है और जो तारा जहां होता उसको पहचान लिया जाता है ॥ २७ ॥

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥

दो०—ध्रुव निश्चलकी ज्योतिमें, संयम कर मुनि कोइ ।
तारागणकी चालको, सुगम लेत सो जोइ ॥

अर्थ—निश्चल ध्रुवमें संयम करनेसे तारागणकी चालको सुगमतासे जान लेता है ॥ २८ ॥

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥

दो०—नाभिचक्रमें योगिजन, संयम कर चितलाय ।
कायव्यूहको ज्ञान सब, प्रकट होत जिय आय ॥

अर्थ—नाभिचक्रमें संयम करनेसे कायाव्यूह जो कायाके वात पित्त कफ धातु आदिक वस्तु हैं सबका ज्ञान होता है ॥ २९ ॥

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥

दो०—कंठकूप संयम करे, भूख प्यास नहिं होत।
उदर रहत परिपूर्ण तब, होत बंद तिहिं सोत ॥

अर्थ—कंठकूपमें संयम करनेसे भूख प्यास नहीं लगती उदर भरा रहता है भूख प्यासके सोत बंद हो जाते हैं ॥ ३० ॥

कूर्मनाड्यां स्थैर्य्यम् ॥ ३१ ॥

दो०—नाभिमाहि जे कूर्म है, तामें संयम देत।
पूरण स्थिरता चित्तकी, स्वाभाविक गहि लेत ॥

अर्थ—नाभिमें जो कूर्म है उसमें संयम करनेसे चित्त स्वाभाविकही पूर्ण स्थिरताको प्राप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥

मूर्द्धज्योतिषि सिद्धिदर्शनम् ॥ ३२ ॥

दो०—मूर्धामें इक ज्योति है, तिहि संयम कर लेत।
तीन लोकके सिद्ध सब, आय दर्श तिहिं देत ॥

अर्थ—जो मूर्धाकी ज्योतिमें संयम करता है उसे तीनों लोकके सिद्ध आय प्रकट अपना दर्शन देते हैं ॥ ३२ ॥

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥

दो०—अथवा प्रातिभ ज्ञानते, पुरुष होत सर्वज्ञ।
तीन काल तिहुँ लोकमें, सबको जानत सुज्ञ ॥

अर्थ—अथवा प्रातिभज्ञान अर्थात् विवेकजन्य ज्ञानसे पुरुष सर्वज्ञ हो जाता है कि तीनों काल और तीनों लोकोंकी संपूर्ण बातको जान लेता है ॥ ३३ ॥

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥

दो०-हृदयमध्य जो कमल है, कर संयम यह नीत।
सो प्रकाश चितमें करे, धारत ध्यान प्रतीत॥

अर्थ-हृदयमध्यमें जो कमल है उसमें संयम करनेसे चित्तमें प्रकाश होता है यह निश्चय जानना चाहिये॥ ३४॥

सत्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम्॥ ३५॥

दो०-पुरुष विलग है बुद्धिते, भोगत है सब बुद्धि।
पै भासत दोउ एकसे, भासत अज्ञ विरुद्ध॥
बुद्धि पुरुष दोउ भिन्न है, पै अभेद कर भान।
भोगधर्म हैं बुद्धिके, पुरुष अर्थ सो जान॥
तासे भोगहु जानिये, पुरुष निमित उत्कर्ष।
ताहि त्यागकर स्वार्थमें, संयम पुरुष प्रदर्श॥
जब जानत या भेदको, आत्मज्ञान तब जान।
रज तम कर पाखंड सब, मिटत आत्मकर ज्ञान॥

अर्थ-पुरुष बुद्धिसे पृथक् है और भोगोंको भोग करती है परंतु अज्ञानीसे उनकी पृथक्ता नहीं भासित होती बुद्धि पुरुष जो भिन्न २ हैं उनको अज्ञानवश अभेद करके मानता है भोगधर्म बुद्धिके हैं उनको पुरुष अपने अर्थ जान बैठता है इसी अज्ञानसे भोगोंको पुरुषके निमित्त मानता है जब इस बातको त्यागकर भेदको जान लेता है और अपनी आत्माको शुद्ध जानता है तब रजोगुण तमोगुणकृत सब पाखंड नाश होकर आत्मज्ञान होता है॥

भा.चौ.-भोगत दुख सुख बुद्धी भोगा। जानत पुरुष अज्ञान संयोगा॥
अज्ञानते आतमा आपनको। मानत दुख सुख परितापनको॥
इहि प्रकार जब मानत नाहीं। स्वयं ज्ञानकर रूप सदाहीं॥
बुद्धीको निजरूपते भिन्ना। जानकरहि संयम अवछिन्ना॥
आत्मज्ञान प्रकट तब होई। तब माया सब नासत सोई॥
आत्माकर जो पूरण ज्ञाना। जिहि संयम प्रातिभ मन माना॥

अर्थ-दुःख सुख भोगोंको बुद्धि भोगती है पुरुष अज्ञानके वश अपनेको दुःख-सुखभोक्ता मानता है जब इस प्रकार अपनेको भोक्ता नहीं जानता तब चित्त अपने २ ज्ञानरूप सदाको जान लेता है बुद्धिको अपने रूपसे भिन्न मानकर संयम करता है तब आत्मज्ञान प्रकट होनेसे मायाका नाश होकर पूर्ण आत्मज्ञान प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥३६॥

दो०-स्वारथमें संयम किये, पावत सब ऐश्वर्य ।
प्रातिभ श्रावण वेदना, रूप गंध रस वर्य ॥

अर्थ-स्वार्थ अर्थात् आत्मामें संयम करनेसे दूर श्रवण अर्थात् दूर देशमें हुये भये शब्दका श्रवण और दिव्य स्पर्श दूर देशस्थित तथा अत्यंत सूक्ष्म वस्तुके स्पर्शको करना दिव्य रस दिव्य रूप दिव्य गन्धका ज्ञान होता है ॥

भा. चौ.-आत्माकर जो पूरण ज्ञाना । तिहिं संयम प्रातिभ मन माना ॥
प्रातिभ हुये भये शब्दादिक । तिनको प्राप्त होत श्रवणादिक ॥
दिव्य श्रवण और दिव्य स्पर्शा । दिव्य गंध अरु स्वाद प्रदर्शा ॥
दूर देशमें जो कछु होई । भासत रहत निकट सम सोई ॥

दो०-दूर भये शब्दादिको, होत स्वभाविक ज्ञान ।
प्रातिभ दर्शन अरु श्रवण, स्पर्श गंध रस जान ॥

अर्थ-आत्मज्ञान होनेके अनन्तर प्रातिभज्ञान होता है प्रातिभशब्दका अर्थ गुप्त भये हुएका है सो गुप्तशब्दादिका ज्ञान होता है दिव्य श्रवणसे दूर देशमें भये हुए शब्दको सुनना और दिव्य दर्शसे दूर देशकी सर्व वस्तुओंको देखना इसी प्रकार दिव्य स्पर्श दिव्य स्वाद दिव्यदर्शन आदि होता है । जो कुछ दूर देश अथवा गुप्तमें होता है उसका निकटके समान भान होता है और त्रिकालज्ञ होता है अर्थात् उसको दूर देशके शब्दादिका ज्ञान स्वाभाविकसा हो जाता है और उसको दूर देशकी सब वस्तु निकटके समान भासित होने लगती हैं ॥ ३६ ॥

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७॥

दो०-पूर्व उक्ति ऐश्वर्य सब, विघ्न समाधी जान ।
पै व्युत्थान समाधिमें, है सब सिद्धि समान ॥

अर्थ-पूर्व कहे भये जो ऐश्वर्य हैं वे समाधिके विघ्नरूप हैं परन्तु व्युत्थानदशा अर्थात् समाधिके पूर्व तथा पश्चात्में सिद्धियोंके समान हैं ॥

भाष्य दो०-ये सब सिद्धी करत है, विघ्न समाधीमाहिं ।
तासे इनको त्यागकर, परमानंद समाहिं ॥

अर्थ-ये सब सिद्धियां समाधिमें विघ्न करती हैं परमानन्दमोक्षके चाहनेवाले योगी इन सिद्धियोंका त्याग कर देते हैं और इनके फंदेमें नहीं पडते हैं ॥ ३७ ॥

बंधकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ ३८ ॥

दो०-धर्म और अधर्मको, बंधन कारण जान ।
संयमते तिनका करै, शिथिल शक्ति जिय मान ॥

सो०-पुनि कर नाडीज्ञान, जिहिं मारग चित गवन कर ।
परकायामें जान, चित्त करत परिवेश पुनि ॥

अर्थ-धम और अधर्म ये बंधनके कारण हैं इनकी शक्तिको संयमद्वारा शिथिल कर फिर जिस नाडीमें चित्तका गवन होता है उसमें संयम करनेसे योगी अपने चित्तको परकी कायामें प्रवेश कर लेता है ॥

भाष्य छंद-बंधकारण जोन धर्माधर्म पावत शिथिलता ।
प्राचार नाडी चित्तकी कर गवन आगम सफलता ॥
ज्ञान नाडी गवन आगम चित्तको जब होत है ।
प्रवेश कर पराचित्तमें निज चित्तको उद्योत है ॥
चित्तके संग इन्द्रियांहू जात परके कायमें ।
करत है परवेश पर अंग जाय अपने छायमें ॥

अर्थ-बन्धकारण जो धर्म अधर्म है जब उनकी शिथिलता होती है और प्रचारनाडी जो चित्तकी गवन आगवन नाडी उसका ज्ञान होनेसे उसके द्वारा योगी अपने चित्तको परकी कायामें प्रवेश कर उद्यत होता है और चित्तके संग सब इन्द्रियांभी परशरीरमें अपने शरीरसे जाकर प्रवेश करती हैं ॥ ३८ ॥

उदानजयाज्जलपंककंटकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ॥३९॥

दो०-उदानवायूके विजय, गवन करत आकाश।
जलकंटक औ पंकपर, थल इव चालन जात॥

अर्थ-उदानवायुके जीतनेसे आकाशमें गवन करनेकी शक्ति प्राप्त होती है और जलकंटक तथा कीचमें थलकी भांति चलने लगता है॥

भाष्य छंद०-उदानवायू जीत योगी चलत जलकंटकादिपर।
करत नाहीं व्यथा तिनको जात जैसे थलहि पर॥
करत इच्छा जबहि अपने मरणकी चित माहिते।
मरत इच्छा पाय अपनी विना इच्छा नाहिते॥

अर्थ-उदानवायुके जयसे जलकंटक और कीचपर थलभांति चलनेकी सामर्थ्य प्राप्त होती है और जलकंटक आदि उसको कुछ व्यथा नहीं देते जब अपने मरनेकी इच्छा करता है तब वह अपनी इच्छासे मरता है विना इच्छा मृत्यु उस योगीको नहीं मार सक्ती है॥ ३९॥

समानजयाज्ज्वलनम्॥ ४०॥

दो०-जो समान जीतहि पुरुष, तो हुइ अग्नि स्वरूप।
तम नाशत सब चित्तकर, करत प्रकाश अनूप॥

अर्थ-समानवायुके जीतनेसे योगीका अग्निके समान तेज होता है और चित्तका अंधकार नाश होकर प्रकाश होता है॥४०॥

श्रोत्राकाशयोः सम्बंधसंयमाद्दिव्यश्रोत्रम्॥ ४१॥

दो०-श्रोत्र और आकाशमें, संयम कर जो कोइ।
सूक्ष्म शब्दहू सुन परत, दिव्य श्रोत्र हुइ सोइ॥

अर्थ-जो श्रोत्र और आकाशमें संयम करता है उसको अत्यंत सूक्ष्म शब्दभी सुनाई देने लगता है वह दिव्यश्रोत्र हो जाता है॥

भाष्य दो०-समान जबसे होत है, जैसे अग्निस्वरूप।
तिमिहिं श्रोत्र आकाशते, दिव्यशब्द जो गूप॥

अर्थ–समानजयसे योगीका जैसे अग्निस्वरूप हो जाता है तैसेही श्रोत्र और आकाशमें संयम करनेसे गुप्त दिव्य शब्द सुनाई देने लगता है ॥ ४१ ॥

कायाकाशयोःसम्बंधसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥ ४२ ॥

दो०–काया औ आकाशको कर संयम लघु तूल ।
करत गवन आकाशसो, तनक होत नहिं भूल ॥

अर्थ–काया और आकाशको लघु और तूल अर्थात् रुईके समान हलका संयम जान करनेसे आकाशमें गवन करनेकी सामर्थ्य रुईके समान हो जाती है ॥

भाष्य दो०–इहि प्रकारसे करत जो, संयम इन्द्रियभूत ।
तिनकी सिद्धीको लहत, इन्द्रियधर्म अकूत ॥

सो०–पंचभूतके मांहि, कारण जो इन्द्रियन कर ।
ताको संयम लाहि, दिव्य होत तिनकर विषय ॥

चौ०–जैसे श्रोत्र अकाशक संगा । दिव्यशब्दकर मिलन प्रसंगा ॥
तैसेहि त्वक अरु वायुयोगते । होत दिव्यस्पर्श भोगते ॥
नेत्र तेज रसना जल नासा । संयम गंध कराहि परकाशा ॥
दिव्यदृष्टि अतिरस और गंधा । होत दिव्य सब विषय अमंदा ॥
काया और आकाशसंयोगा । संयम कर लघु तूल अमोघा ॥
लघु अरु सूक्षम तूल समाना । होत गवन अकाश भ्रमाना ॥
जलपर चलहि थलहिकी नाई । सूरज किरण विहार कराई ॥
लघुता गहि डोलहि सब ठांई । जहँ इच्छा कर गवन तहांहीं ॥

अर्थ–काया आकाशके पञ्चभूत और इन्द्रियोंमें संयम करनेसे उनके विषय सब दृष्टपथ होते हैं पञ्चभूतमेंसे जो जिस इन्द्रियका कारण है उसमें और उसकी इन्द्रियमें संयम करनेसे सब इन्द्रियोंकी विषय दिव्य होकर दृढपथ होते हैं जैसे श्रोत्र और आकाशके संयमसे दिव्य शब्द होता है और त्वचावायुसे दिव्यस्पर्श नेत्र और नेत्रसे दिव्य दृष्टि जिह्वा और रससे दिव्य स्वाद नासिका और गन्ध व पृथ्वीके

दिव्य गन्ध होता है काया और आकाशकी लघु और तूलके समान संयम करनेसे आकाशगवन जलपर गमन और सूर्यकी किरणोंका विहार प्राप्त होता है और हलका होनेसे उसकी सर्वगत हो जाती है जहां उसकी इच्छा होती है गवन करता है ॥४२॥

बहिरकाल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशा-
वरणाक्षयः ॥ ४३ ॥

दो०—महाविदेहा जानिये, वृत्ती बाहिर शरीर ।
सब आवरण विनाश कर, बुद्धि प्रकाश गंभीर ॥

अर्थ—चित्तकी वृत्ति शरीरके बाहर जानकर उसमें संयम करनेसे सब आवरणका नाश होकर बुद्धिमें प्रकाश होजाता है ॥

भाष्य दो०—कायाते बाहर जबहिं, मनकी वृत्ती जाहि ।
लाभ होत सो जानिये, विदेहधारणा ताहि ॥

सो०—शरीरमाहि मन होय, वृत्ति बाहिर निष्कलपना ।
महाविदेश सोय, क्षय आवरण प्रकाशकर ॥

अर्थ—कायासे बाहर मनकी वृत्ति प्राप्त होनेका नाम विदेहधारणा है शरीरसे मनको बाहिर करके वृत्तियोंकोभी बाहर मान धारण करनेका नाम अकाल्पिता महाविदेहा है उसके रोकनेवालेको क्लेशकर्म फल है वही आवरण कहाते हैं सो आवरणका नाश होके आवरणरहित योगी अपनी इच्छानुसार विहार करता है ॥ ४३ ॥

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥४४॥

दो०—आकाशादिक भूतकी, पांच अवस्था जोइ ।
स्थूल रूप अरु सूक्षम, अन्वयार्थवत सोइ ॥
इहिमें संयम करत जब, भूत विजय तब होत ।
पावत सिद्धी अमित सो, दिव्य होत चित जोत ॥

अर्थ—आकाश आदिक पञ्चभूतकी स्थूल स्वरूप सूक्ष्म अन्वय अर्थवत् जो पांच अवस्था हैं इनमें संयम करनेसे पञ्चभूत वश होते हैं और इनके वश होनेसे अमित सिद्धियां प्राप्त होती और चित्तमें दिव्य प्रकाश हो जाता है ॥

भा. छन्द-स्थूल और स्वरूप सूक्षम अन्वयार्थवत् रूप हैं ।
करत संयम विजय पावत होत वश सब भूत हैं ॥
स्थूल शब्दादिकनको जो धर्म आकाशादिके ।
एक एक बढायकर गुण पांव अपनी आदिके ॥
मूर्ति पृथिवी स्नेह जल अरु अग्नि उष्ण स्वरूप है ।
वायुचालन धर्मयुत आकाश काश अनूप है ॥
सूक्ष्मते परिमाण मानहूं त्रिगुण अन्वय जानिये ।
त्रिगुणके ये कार्य मुक्ती हेतुकर अनुमानिये ॥
सो०-अर्थवत सब पांच, रूप कहे हम भूतके ।
सब मानहूं तुम सांच, भूतवश्य संयम किये ॥
दो०-भूतविजयसे होत है, अणिमादिक सिधि अष्ट ।
योगी साधन करत है, सिद्धीफल स्पष्ट ॥

अर्थ-स्थूल और स्वरूप सूक्ष्म अन्वय अर्थवत् ये पांच अवस्था पंचभूतकी हैं इनमें संयम करनेसे सब भूत वश होते हैं स्थूलसे आकाश प्राणीके जो धर्म हैं तिनमें एक एक बढाके पांचोंके गुण जानना चाहिये जैसे आकाशका शब्द वायुके स्पर्श शब्द अग्निके रूप स्पर्श शब्द जलके रस रूप स्पर्श शब्द पृथिवीके गंध रस रूप स्पर्श शब्द यह स्थूल कहाता है पृथिवी मूर्तिमान् जल रस है अग्नि उष्ण वायुका चालन आकाशका अवकाश ये स्वरूप हैं सूक्ष्म और परमाणुको और तीन गुणोंको अन्वय जानना चाहिये त्रिगुणके मुक्ति हेतु जो कार्य है वह अर्थवत् कहाते हैं ये सब भूतोंके रूप हैं इनमें संयम करनेसे अणिमादिक आठ सिद्धि प्राप्त होती हैं ॥४४॥

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४५ ॥

दो०-पंच भूतकी विजयते, सिद्धी आवत धाय ।
अणिमादिक सिद्धि आठहू, अरु स्वरूप अधिकाय ॥

अर्थ-पंचभूतकी विजयसे सिद्धि आपही प्रकट प्राप्त होती है अणिमादिक आठों सिद्धि और स्वरूपकी अधिकता प्राप्त होती है ॥

भा. छं०–स्थूलमें संयम कियेसे प्राप्त सिद्धी चारकी।
स्थूलसे सूक्षम बनहि और भार लघुता सारकी॥
बहुत भारी रूप धारत करत महिमा विदित सब।
अंगुलीसे शशिहि महिकर होत जगमें प्राप्त तब॥
रूपते प्राकाम्य सिद्धी करत भूमिप्रवेशसो।
जलहुमेते ना रुकत है पाइ सिद्धि प्रदेशसो॥
सूक्ष्ममें जब होत संयम प्राप्त सिद्धि वासित्व जो।
स्वाधीन पांचों भूत जाके और भौतिकतत्व जो॥
ईशत्व प्रापत होत अन्वय किये संयम चित्तको।
होत समरथ रचन नासन सबै भौतिक तत्वको॥

दो०–अर्थवतते होत है, सिद्धी प्राप्त वाशित्व।
सत्य कल्पना जीयकी, पूर्ण होत सब नित्य॥

अर्थ–स्थूलमें संयम करनेसे चार सिद्धि प्राप्त होती हैं स्थूलसे सूक्ष्म हो जाना अणिमा १ और भारीसे हलका हो जाना लघिमा २ बहुत भारीरूपादि धर लेनेका नाम महिमा ३ पृथिवीमें बैठ हुए अंगुलीसे चंद्रमाका स्पर्श करना प्राप्त ४ स्वरूपके संयमसे जलकी नाई भूमिमें प्रवेश करना प्राकाम्य ५ सूक्ष्ममें संयम करनेसे भूत भौतिक पदार्थका स्वाधीन हो जाना वाशित्व ६ अन्वयमें संयम करनेसे सर्वभौतिक पदार्थोंके उत्पन्न और नाश करनेमें समर्थ हो जाना ईशत्व ७ अर्थवत्में संयम करनेसे वाशित्व सिद्धि प्राप्त होती है उससे चित्तके संपूर्ण संकल्प पूर्ण हो जाते हैं॥ ४६॥

रूपलावण्यबलवज्रसंहनत्वानि कायसम्पत्॥ ४७॥

दो०–कायाकी संपति यह, रूप कांति बल जान।
वज्रसमान शरीर कर, चार रूप पहिचान॥

अर्थ–रूप, कांति, बल, कठोरता यह चार कायाकी संपत्ति हैं सो पूर्व कथित स्थूलादि भूतसंयमसे प्राप्त होती हैं॥ ४७॥

ग्रहणस्वरूपाऽस्मिताऽन्वयार्थवत्त्वसंयमादि-
न्द्रियजयः॥ ४७॥

दो०-ग्रहणरूप अरु आस्मिता, अन्वयार्थवत रूप।
इनमें संयमके किये, इन्द्रियाविजय अनूप ॥

अर्थ-ग्रहण स्वरूप आस्मिता अन्वय अर्थवत् इनमें संयम करनेसे इन्द्रिय वश होती हैं ॥

भा. चौ.-ग्रहणस्वरूप आस्मिता जानो। अन्वयार्थवत् संयम ठानो॥
इन्द्रिय जीत लेत योगीजन। संयम कर फल पावत दुखहन॥
शब्द स्पर्श रूप रस गंधा। तिनको ग्रहण करत निरबंधा॥
ज्ञानरूप दूसर अनुमानो। अहंकार आस्मिता जानो॥
तीनो गुणकर कारज जोई। अन्वयरूप कहावत सोई॥
गुण पुरुषार्थ अर्थवत जानो। संयम करे इन्द्र जित मानो॥
इन्द्रियजयते मन जय जानो। जय विकर्ण प्रकृती अमानो॥
तीनो सिद्धी पावत सोई। इन्द्री वश कर राखे जोई॥

अर्थ-ग्रहण स्वरूप आस्मिता अन्वय अर्थवत् ये इन्द्रियोंके दूसरे रूप हैं इनमें संयम करनेसे इन्द्रिय मन विकरणप्रकृतिका जय होता है पंचतन्मात्रा शब्दादिकका नाम ग्रहण और ज्ञानका नाम स्वरूप अहंकारका आस्मिता, तीनों गुणोंके कार्योंका नाम अन्वय गुणोंके पुरुषार्थका नाम अर्थवत् है इनमें संयम करनेसे इन्द्रिय वश होती हैं ॥ ४७ ॥

ततो मनोजवित्वविकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ४८ ॥

दो०-इन्द्रियजयते होत हैं, तीन प्रभाव अरूप।
मनजावित्व विकर्ण अरु, जय प्रधान अनुरूप॥

अर्थ-इन्द्रियजयसे तीन फल होते हैं मन विकरण और प्रधान तीनों जय होते हैं ॥

भा० दो०-मनके सम न वेग, मनोजवित्व कहाव सोइ।
विन कायाको वेग, गवनहिं दूर विकर्णकर॥

प्रकृति कार्यवश होय, जो प्रधान जीते पुरुष ।
तीनो सिद्धी जोय, मधुप्रतीक तिहि नाम कह ॥

अर्थ—मनके समान वेग होनेको मनोजवित्व विना कायाके दूर देशमें गवन विकरण और प्रकृतिके कार्योंको वश कर लेनेका नाम प्रधान जय है इन तीनों सिद्धियोंकी मधुप्रतीक संज्ञा है ॥ ४८ ॥

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावा-धिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ४९ ॥

दो०—प्रकृति पुरुषको ज्ञान जब, होत चित्तमें आय ।
सर्व भाव अधिपति बने, अमित ज्ञान सो पाय ॥

अर्थ—जब प्रकृति पुरुषका ज्ञान हो जाता है तब सब पदर्थोंका अधिपति और सर्वज्ञ हो जाता है ॥ ४९ ॥

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ५० ॥

दो०—विवेकख्याति वैराग्यते, दोषबीज क्षय होत ।
नशत अविद्याबीजके, पावत मुक्ती जोत ॥

अर्थ—विवेकज ज्ञानसे दोषोंके अर्थात् अविद्यादि क्लेशोंके बीज नष्ट हो जानेसे कैवल्य मुक्ति होती है ॥ ५० ॥

स्थान्युपनिमंत्रणे संगस्मयाकरणं पुनिर-निष्टप्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥

दो०—जब देवादिक आयकर, करै निमंत्रणा जासु ।
तिनमें प्रीति न कराहि सो, हुए अनिष्ट पुनि तासु ॥

अर्थ—जब कैवल्य मोक्ष प्राप्त हो जाती है तब देवता आयके उसको स्वर्गादिके सुख दिखाकर निमंत्रण करते हैं सो योगीको चाहिये उनके निमंत्रणमें लोभ न करे क्योंकि फिर क्लेश प्राप्त हो जानेका प्रसंग है ॥

भा. चौ.-जब योगीजन मुक्ती पावें। विघ्न अनेक स्थानी लावें॥
देव आय सब सुख दिखावें। आदर कर पुनि विनय सुनावें॥
उत्तम भोग रसायन कन्या। भोगहु इनहिं करो तुम धन्या॥
यह विमान और कल्पवृक्ष है। वन उपवन रमणीक स्वच्छ है॥

दो०-कर विहार इहिं ठाह, ऐसो सुख नहिं मोक्षमें।
कहत देव यापांह, मत कहु जावो अनत कहुँ॥

अर्थ-जब योगी जनोंको मुक्ति प्राप्त होती है उस समय स्थानी जो देवता हैं वे विघ्न करते हैं और देवता उस योगीके निकट आयकर आदर और विनयसे उसको सब स्वर्गके सुखोंको दिखाते हैं और कहते हैं कि यह सब उत्तम भोग है यह रसायन है यह सुन्दर कन्या है इनको भोगके इन सबको धन्य करो ये विमान यह कल्पवृक्ष यह वन उपवन अत्यंत रमणीक और स्वच्छ है इस स्थानपर रहकर विहार करो अंत कहीं मत जाओ ऐसा सुख मोक्षमें नहीं है॥ ५१॥

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्॥ ५२॥

दो०-क्षण और क्षणक्रममें करत, संयम योगी जोय।
तिनको होत विवेक सब, ज्ञान सकल दृढ होय॥

अर्थ-क्षण क्षणोंके क्रममें संयम करनेसे योगीको विवेकजन्य ज्ञान होता है॥

भाष्य दो०-क्षण क्षण क्रम दोऊ विषैं, संयम जो कर लेत।
यावत ज्ञान विवेक सो, कर प्रकाश तब देत॥

छंद-परमाणु चालन तजत हैं इक देशते इक देशको।
ताहि जानो क्षणिक समयो क्रम अनंतर देशको॥
क्रमसमूह यथार्थ नाहीं शून्यकाल स्वरूपको।
वस्तुरूपा भासि है भ्रम होत ताके रूपको॥
क्षणनमें और क्रमनमें जो करत संयम चित्तको।
होत है प्रत्यक्ष तिनके हृदय ज्ञान विवेकको॥

अर्थ–परमाणु एक देशको छोडकर दूसरे देशमें जाता है उसको क्षण और इन क्षणोंका प्रवाहरूप जो है उसे क्रम कहते हैं यह यथार्थ नहीं है क्योंकि यह क्षणोंका समूह जो है सो मुहूर्त रात दिन आदि कालरूप है और काल कोई वस्तु न होकर शून्यरूप है भ्रमवश यह काल वस्तुके समान भासित होता है सो जो क्षणोंमें और क्षणोंके क्रमोंके समूहमें संयम करते हैं उनके हृदयमें विवेकजन्य ज्ञान प्रकट होता है५२॥

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययो-स्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ५३ ॥

दो०–होत विवेकज ज्ञानते, तुल्य वस्तु कर ज्ञान ।
लक्षण जात अरु देसकर, भेद परत नहिं जान ॥

अर्थ–जब दो वस्तु जो समान जाति लक्षण देशसे है उनका ज्ञान नहीं होवा तब विवेकज ज्ञानसे उसका ज्ञान होता है ॥ ५३ ॥

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥

दो०–भवतारक सब विषयकर, ज्ञान सर्वथा होय ।
तीन कालमें क्रमरहित, ज्ञान विवेकज सोय ॥

अर्थ–संसारसागरसे तारनेवाला होनेसे इसका नाम तारक ज्ञान है सो इस तारक ज्ञानसे क्रमरहित तीनों कालमें सर्व विषयोंका विवेकज ज्ञान होता है इसीका नाम तारक है ॥

भाष्य दो०–तारक ज्ञान विवेकको, सर्व ज्ञानकी खान ।
शेष विषय कोउ रहत नहिं, होत सर्वको ज्ञान ॥
सो०–तारक तरणि समान, भववारिधिते पार कर ।
यह निश्चय जिय जान, तारकमें संयम करो ॥

अर्थ–तारक विवेकजन्य ज्ञानका नाम है यह सर्व ज्ञानकी खानि है इसके होनेसे सर्व विषयका ज्ञान होता है कोई विषय शेष नहीं रहता ये तारक नौकाके समान भवसागरसे तारनेवाला है ऐसा निश्चय जान इसका संयम करना चाहिये ॥५४॥

सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ ५५ ॥

दो०-बुद्धि पुरुषकी शुद्धि अरु, साम्यावस्था जोइ।
ताहि कहत कैवल्यता, मुक्तिरूप है सोइ ॥

अर्थ-बुद्धि और पुरुष दोनोंकी शुद्ध साम्यावस्थाका नाम कैवल्यमुक्ति है ॥

भा.छं.-जब होत निर्मल बुद्धि सतगुण शुद्ध पुरुष समानसी।
जर जात मल सब तम रजोगुण उदय मानो भानुसी ॥
तिमि पुरुषसम और शुद्ध हुइकर कर प्रकाश अनंत सो।
सब कर्म फल नसि जात क्षणमें होत दुखको अंत सो ॥
कैवल्य राजत ज्योतिसम तब रहत तम कतहूं नहीं।
पूर्ण होत समाधि जबही पाव परमानंद सही ॥
ऐश्वर्य सब तब आप आवत धायकर तिहिं निकट सो।
भोग करत समाधिमें सब दुख अविद्या मिटत सो ॥

अर्थ-जब बुद्धि निर्मल शुद्ध पुरुषके समान सतोगुणी हो जाती है और रजोगुण तमोगुणरूपी मल सब जल जाते हैं और बुद्धिमें सूर्यके समान प्रकाश होता है इसी प्रकार पुरुषभी शुद्ध होकर अपने अनंत प्रकाशको करता है उस समय सर्व कर्मोंके फलका नाश होकर दुःख उसी क्षणमें मिट जाते हैं और बुद्धि पुरुषकी साम्यावस्था अर्थात् समानता हो जाती है उसी साम्यावस्थाको कैवल्यमोक्ष कहते हैं. कैवल्यमोक्ष होनेसे अंधकारका नाश होकर केवल प्रकाशही प्रकाश रहता है और समाधि पूर्ण होनेसे परमानन्द पाता है तब संपूर्ण मोक्ष ऐश्वर्य अपने आप उसके पास आते हैं और वह समाधिमें मोक्षसुखोंको भोगता है और अविद्या आदि दुःखोंका लवलेशभी नहीं रहता ॥

दो०-श्रीपातंजलिमुनिकृपा, पूर्ण विभूती पाद।
रामभक्त पूरण कियो, मुनिवरचरण प्रसाद ॥

अर्थ-श्रीमहर्षिपातंजलिकी कृपासे और उनके प्रसादसे रामभक्तने विभूतिपाद पूर्ण किया है ॥

दो०—सुन समझहिं जन मुदित मन, पूर्ण विभूतीपाद ।
नाश अविद्या आदि दुख, पावत मोक्षप्रसाद ॥

अर्थ—जो पुरुष इस पूर्ण विभूतिपादको सुनकर प्रसन्न मनसे समझते हैं उनके अविद्यादि क्लेश नाश होकर मोक्षरूप आनंद प्राप्त अवश्य हो जायगा ॥

इति श्रीपतंजलियोगशास्त्रे भाषाभाष्ये श्रीमत्पंडितगुरुदयालस्यात्मजपंडितरामभक्तविरचिते विभूतिपादस्तृतीयः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ कैवल्यपादप्रारम्भः ।

जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥

दो०—चरणकमल वंदन करों, पातंजलिमुनिकेर ।
कैवल्यपाद वर्णहु सुमिरि, मुक्ति न लावहि देर ॥
जन्मौषधि और मंत्र तप, पुनि समाधि ते जान ।
सिद्धी प्राप्ती होत हैं, कर साधन सन्मान ॥

अर्थ—श्रीमहर्षिपतंजलिके चरणकमलोंको वंदना करके कैवल्यपादका वर्णन करता हूं जिसका यत्नपूर्वक साधन करनेसे सद्य मुक्ति प्राप्त होती है. जन्म, औषधि, मंत्र, तप वा समाधिके यथार्थ साधन करनेसे सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥

भाष्य छंद—जन्मते शुभ कर्मके फल पाव देवशरीरको ।
देवरूपा होय तह अणिमादि सिद्धी तीरको ॥
औषधीते होत काया कल्प सब दुख नाशहीं ।
मंत्रद्वारा गगनगति लहि सर्व सिद्धी प्रकाशही ॥
अणिमादि तपवश आयकै सब सेवा करैं ।
होत सब मनअर्थ पूरण चित्त चाहैं तह चरैं ॥
समाधि सिद्धी करी वर्णन पूर्व हम सब रीतिसों ।
परिणाम जैसे पलटि है अब कहत ताकों प्रीतिसों ॥

अर्थ-जन्मसे शुभ कर्मोंके करनेके फलसे देवशरीरको पाकर सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है और औषधिके सेवन करनेसे कायाकल्प होकर शरीरके दुःख नाश होते हैं मंत्रके जप करनेसे आकाशमें गमन करनेकी शक्ति और सिद्धियोंका प्रकाश होता है और तपस्याके करनेसे सब अणिमादि सिद्धि वश होकर दासीकी नाईं आज्ञाकारी हो जाती हैं और मनोरथ सब पूर्ण होकर वह सर्वगति हो जाता है यह समाधिसे सिद्धि प्राप्त होती है अब हम जैसे परिणाम पलटता है उसको कहते हैं ॥ १ ॥

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

दो०-प्रकृतिके पूरण भये, जात्यन्तरको पाय ।
होत पृथक परिणामसों, जन्मान्तरमें जाय ॥

अर्थ-प्रकृतिके पूर्ण हो जानेसे अन्य जन्ममें अन्य जाति परिणाम होता है ॥

भा.चौ.-पंच भूत और प्रकृति शरीरा । अहमित इन्द्रिय ज्ञान गँभीरा ॥
कारणते कारजमें भरई । तव आपूर प्रकृतिअनुसरई ॥
प्रकृति पूर्णताते जात्यन्तर । तब परिणाम होत जन्मांतर ॥
जात्यन्तर नहिं विना धर्मके । होत कबहुँ परिणाम कर्मके ॥
धर्माधर्म पुण्य अरु पापा । तिहिं अनुरूप जन्मकर थापा ॥
देव मनुज पश्वादिक जन्मा । पावत निज निज कृत अनुकर्मा ॥
वर्णभेद प्रकृती जिमि होई । आगिल सूत्र कहत मुनि सोई ॥
सो दृष्टांत कहत अब गाई । प्रकृति भेद सब कहौं बुझाई ॥

अर्थ-पृथिवी आदिक जो पञ्च भूत हैं वह शरीरकी प्रकृति है और अस्मिता अर्थात् अहंकार इन्द्रियोंकी प्रकृति है जब ये कारणसे कार्यरूप हो जाते हैं तब प्रकृतिकी पूर्णता कहाती है विना धर्म अधर्म कर्मके जात्यंतर परिणाम नहीं होता धर्म अधर्म पुण्य और पापके अनुसार जात्यन्तर परिणाम होता है देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि जातिको कर्मानुसारही पाता है जातिभेदसे जैसी प्रकृति होती है उसको आगेके सूत्रसे महर्षि कहते हैं ॥ २ ॥

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ३ ॥

दो०—प्रकृति प्रयोजक धर्म नहिं, केवल अहै निमित्त।
पै तासे कृषिकार सम, नाशत बंधप्रकित्त॥

अर्थ—धर्म आदिक प्रकृतिका कारण होनेसे प्रकृतिका प्रयोजक अर्थात् प्रवर्तक धर्म नहीं है धर्म केवल निमित्तकारण है निमित्तकारणसे आवरणका निवारण होता है जैसे किसान क्षेत्रमें जल भर जाने पर उसके रोकनेवाली जो आडरूप नदी है उसको दूर करता है आड दूर होनेसे जल आपही उस खेतसे बाहर निकल अन्यक्षेत्रमें प्राप्त होता है इसी प्रकार धर्म अपनी शक्तिके अनुसार अधर्म जो देवादि उत्तम जातियोंका आवरण प्रतिबंधक है उसे निवारण करता है तब प्रकृति आपही देवजाति आदि परिणामोंमें प्रवृत्त हो जाती है तथा धर्म जो तिर्यग्योनि आदिका आवरण है उसे अधर्म अपनी शक्तिसे दूर कर देता है तब प्रकृति अपने आप तिर्यग्योनिके परिणामको उत्पन्न कर देती है॥

भाष्य सो०—कारणके आधीन, कारज नितही रहत है।
कारज कारणहीन, कछु न होत ताके किये॥

चौ०—जैसे विन कुम्हार घट नाहीं। होत जुरे मृदु जल इकठांई॥
नहिं पुनि चक्र दण्ड घटकर्तक। घटकारण स्वतंत्र परिवर्तक॥
जैसे घट परिवर्त कुम्हारा। तैसे ईश्वर प्रकृति पसारा॥
धर्म आदि परिणामनिमित्ता॥ प्रकृति प्रयोजक नहिं परवृत्ता॥
कृषिकर सम निमित्त अनुमानो। कर्ता नाश आवरण मानो॥
जिमि जल रुकत क्षेत्रके मांहीं। क्यारि फोर देत सब ठांई॥
इहि प्रकार ईश्वर कृत नियमा। करत धर्म आदिक सब कर्मा॥
दुर्गति सुगति नरक और स्वर्गा। जाति पांति अवरो अपवर्गा॥

अर्थ—जैसे सदा कारणके आधीन कार्य रहता है कार्य विना कारणके कुछ नहीं कर सक्ता इसी प्रकार धर्म प्रकृतिका प्रेरक नहीं केवल निमित्तमात्र है जैसे विना कुम्हारके घटकी उत्पत्ति नहीं होती चाहे मृत्तिका और जल दण्ड चक्र आदिक स्वयं घटके करनेवाले नहीं हैं विना कुम्हारकी सहायता घटकी उत्पत्ति मृत्तिकादिसे नहीं हो सक्ती तैसेही ईश्वर प्रकृति आदिका प्रेरक है और धर्म आदिक परिणामके निमित्तकारण है. प्रकृतिके प्रयोजक अर्थात् प्रवृत्ति करनेवाले नहीं है धर्मादिक तो किसानके समान आवरणका नाश करनेवाले हैं जैसे क्षेत्रमें जब जल रुक जाता है तब

किसान उस रोकरूप आवरणको दूर करके एक क्यारीसे दूसरी क्यारी फोडकर अन्य स्थानमें जलको पहुँचा देता है इसी प्रकार ईश्वरकृत नियमोंके अनुकूल धर्माधर्म आवरणको दूर करते हैं धर्मसे नरक और दुर्गतिरूप आवरणका नाश और अधर्मसे स्वर्ग और सुगतिरूप आवरणका नाश हो जाता है इसी प्रकार जाति और अपवर्गादिभी जानने चाहिये ॥ ३ ॥

निर्माणचितान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

दो०—होत अस्मितामात्रते, संज्ञाचित निर्माण ।
योगी निर्मित चित्तको, योगप्रभावप्रमाण ॥

अर्थ—अस्मितामात्रसे चित्तकी निर्माणसंज्ञा होती है योगी अपने योगबलसे अनेक चित्तयुक्त शरीर उपन्न करता है इसमें यह संशय होता है कि अनेक चित्तोंके होनेसे योगीको भोगकी सिद्धि नहीं होती इसको आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

दो०—प्रवृतिभेदते अन्य चित, प्रेरण करहि सु एक ।
पूर्व सिद्ध चित प्रेरण, आज्ञा करत अनेक ॥

अर्थ—प्रवृत्ति भेदसे एकही चित्त अनेक चित्तोंका प्रेरक और प्रयोजक है पूर्वसिद्धचित्तकी प्रेरणासे अन्य सब चित्त उस एक चित्तकी आज्ञा करते हैं ॥

भा. चौ०—चित्त अनेक भिन्न तिहि भावा । कैसे योगी भोग न पावा ॥
प्रवृतिभेदते एकहि चेता । करत प्रवृत्ति अनेक निकेता ॥
जो निर्माण चित्त योगीकर । करत प्रवृत्ति सर्व भोगनपर ॥
चितकर भेद कह्यो हम गाई । चितनिर्माण सकल समुदाई ॥

अर्थ—प्रवृत्तिके भेदसे एकही चित्त अनेक चित्तमें प्रवृत्ति करता है चित्तोंकी अनेकतासे उनके भावभी अनेकही माने जावेंगे फिर एक चित्त अनेक चित्तोंको कैसे भोग सक्ता है इसका उत्तर यह है कि योगीने जो एकचित्त निर्माण किया है वही एक चित्त सब चित्तोंके भोगोंमें प्रवृत्त होता है यह चित्तके भेद और निर्माण चित्तका प्रभाव समझाकर कहा गया है ॥ ५ ॥

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

सो०—तिन पांचोंके माहिं, ध्यानजन्य जो चित्त है ।
ताहि वासना नाहिं, सर्वाशयते रहित सो ॥

अर्थ—जन्म औषधि मंत्र तप समाधि इन पांचोंमेंसे जो ध्यानजन्य चित्त है वह आशय अर्थात् राग आदि जो नाना प्रकारकी वासना तिनसे रहित है ॥ ६ ॥

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

दो०—कर्म अशुक्ल अकृष्ण दोउ, योगीजनके जान ।
कृष्णाकृष्णअरु शुक्लतम, अन्य जननके मान ॥

अर्थ—योगीजनोंके अशुक्ल अकृष्ण कर्म अर्थात् पाप और पुण्य दोनोंसे रहित होते हैं अन्य सबके तीन प्रकारके होते हैं एक कृष्णकर्म अर्थात् पाप दूसरा शुक्ल कर्म अर्थात् पुण्यकर्म तीसरा शुक्ल व कृष्ण कर्म अर्थात् पापपुण्यमिश्रित इस भांति कर्म चार प्रकारका होता है ॥

भा.चौ.-कृष्ण शुक्ल अरु शुक्ल अशुक्ला । चौथो जान अकृष्ण अशुक्ला ॥
कर्म अशुक्ल अकृष्ण योगिकर । तीन कर्म सब संसृतिके घर ॥
संन्यासी फल आसा नाही । पाप न पुण्य न भोग सिराही ॥
सब फल अर्पण प्रभुपद करहीं । संसृतिकर्म दुःख सब टरहीं ॥

अर्थ—कर्म चार भांतिका होता है एक कृष्ण कर्म दूसरा शुक्ल कर्म तीसरा कृष्ण-शुक्ल कर्म चौथा अकृष्ण अशुक्ल कर्म सो इन चारोंमेंसे चौथा जो अकृष्ण अशुक्ल कर्म अर्थात् न पाप न पुण्य ये कर्मयोगी संन्यासी कहाता है क्योंकि उनको फलकी इच्छा नहीं होती वे सब कर्म ईश्वरके अर्पण कर देते हैं इससे उनके सांसारिक दुःख नष्ट हो जाते हैं क्योंकि तीन कर्म अर्थात् कृष्णकर्म पाप, शुक्लकर्म पुण्य, शुक्लकृष्ण कर्म पापपुण्यमिश्रित सब संसारके होते हैं ॥ ७ ॥

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

दो०—त्रिविधि कर्मके पाकतें, गुण उपजत हैं जोइ ।
तिहि गुण योग्य स्वरूपकी, प्रकट वासना होइ ॥

अर्थ-त्रिविध कर्मका जैसा पाक अर्थात् फल होता है उसीके गुणके अनुकूल वासना उत्पन्न होती है ॥

भाष्य दो०-कर्म शुभाशुभ पाकको, जैसो गुण अरु रूप।
जैसी जाकी वासना, तैसोही प्रकट स्वरूप ॥

चौ०-उत्तम कृत परिपाक होत जब। उपज न नरकवासना जिय तब ॥
देवयोनिकों पावत सोई। नीचयोनिमें जन्म न होई ॥
नारककर्म करहि जो कोई। देवयोनि नहिं पावत सोई ॥
तिर्यक मनुष देहके माही। जन्म लेत जस कर्म कराहीं ॥
जैसो जोन कर्मफल होई। तैसी पाव वासना सोई ॥
पाप पुण्य कर भेद बतायो। भाष्यअनुसार यथामति गायो ॥

अर्थ-शुभाशुभ कर्मोंका जैसा फल होता है उसीके तुल्य वासना प्रकट होती है उत्तम कर्मके फलके प्रभावसे नरकवासना नहीं होती उत्तम कर्मसे उत्तम देवादिककी योनि प्राप्त होती है उनका नीच योनियोंमें जन्म नहीं होता और अशुभ कर्मके फलके प्रभावसे स्वर्गादिकी वासना नहीं होती उनको देवादिककी उत्तम योनिया प्राप्त नहीं होती जैसा उनका कर्म होता है वैसी मनुष्य पशु पक्षी कीट पतंगादिकी योनिकी वासना होती है यह सब पाप और पुण्यका भेद भाष्य अनुरूप अपनी बुद्धिके अनुकूल वर्णन किया गया है ॥ ८ ॥

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं स्मृति-
संस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ८ ॥

दो०-स्मृति अरु संस्कार सम, ताते अंतर नाहिं।
जाति देश और काल सब, पूरव जाय समाहिं ॥

अर्थ-स्मृति और संस्कारका एक रूप होनेसे जाति देश कालके भेद होनेके कारण वासनामें अन्तर नहीं होता है ॥

भा.चौ.-संस्कार स्मृति इक रूपा। देश काल और जाति अनूपा ॥
होत अनेक देश और काला। जाति अनेक भेद जगजाला ॥

संस्कार स्मृति सम होई । तातें भेद न इनकर सोई ॥
अंतर होत वासना नाहीं । संस्कार स्मृति सममांही ॥

दो०–जैसे काहू कालमें, होत वासना देव ।
जन्मकाल और देशके, वीते रुकत न भेव ॥
देवयोनि ताको मिलहि, भेद कतहुँ नहिं होय ।
स्मृति और संस्कारकी, भये एकता सोय ॥

अर्थ–संस्कार स्मृति दोनोंका एक रूप होनेसे देश काल और जातिके भेदके कारण वासनामें भेद नहीं होता जैसे किसी कालमें देवगसना हो वह देश काल और जातिके भेद होनेसे रुक नहीं सक्ती स्मृति और संस्कारका एकरूप होनेसे देवयोनिही प्राप्त होती है ॥ ९ ॥

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥

दो०–आशिषाको कहत मुनि, नित्य जान सतरूप ।
तिहि कारणते, वासना, है अनादि अनुरूप ॥

अर्थ–आशिषाके सत्य होने और नित्य रूप होनेसे वासनाओंका अनादित्व होता है ॥

भा.छं०–आशिषाकी नित्यताते वासनाहू अनादि हैं ।
जिमि जीव कवनहुँ योनिमें अभिलाष मनमें साधि है ॥
मरों नहिं तिहुँ काल कवहूं रहों नित इहि योनिमें ।
प्रार्थना तव ईश पाहीं करत अपने भोनमें ॥
तिमिहिं जन्मत बालकाको देख मुख आकृति ढरी ।
अनुमान कर सब ज्ञान पावत पूर्व मृत दुखसों डरी ॥
होत अनुभवजन्म पूरव वासनाकी अनादिता ।
चित्तको सब दुःख सुख अरु आतमा निरबाधिता ॥

अर्थ–वासनाभी अनादि है क्योंकि आशिषाके नित्य होनेसे वासना सादि नहीं हो सक्ती जैसे जीव किसी योनिमें अभिलाषा करता है कि मैं किसी कालमें मरूं

इसी योनिमें रहूं ऐशी प्रार्थना ईश्वरसे करता है इसी प्रकार तत्काल जन्मे हुए किसी बालकके मुखकी बुरी चेष्टाको देखकर यह प्रतीत होता है कि यह पूर्व मृत्यु आदिके भयसे भयभीत है इससे पूर्वजन्म होनेका अनुभवद्वारा सिद्ध होता है और वासनाकी अनादिताभी सिद्ध होती है सो वह दुःख सुख सब चित्तको होते हैं आत्मा सदा बाधारहित है । आशिषाका अर्थ अभिलाषा है अर्थात् सुखके बने रहनेकी और दुःखसे निवृत्त रहनेकी अभिलाषा बने रहनेसे आशिषा अनादि है अब अनादि वासनाओंकी जिस प्रकार निवृत्ति होती है वह अगिले सूत्रसे कहते हैं ॥ १० ॥

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ११

दो०—हेतु और फल आश्रय, आलंबनके नाश ।
नष्ट होत सब वासना, करत न फेर प्रकाश ॥

अर्थ—हेतु अर्थात् धर्म अधर्म फल दुःख सुख आश्रय मन आलंबन विषय इनके आश्रित वासना रहती हैं इस लिये हेतु फल आश्रम आलंबन इनके नाश होनेसे वासनाभी नाश होती हैं ॥

भा.चौ.—धर्म आदि सुखहेतु कहावै । दुखकर हेतु अधर्म बतावै ॥
सुखते राग दुःखते द्वेषा । उपजत प्रीति क्रोधकर लेशा ॥
सबकी मूलहेतु तुम जानो । कहत अविद्या मन अनुमानो ॥
ताके आश्रय उपजत जोई । फल अनुरूप कहावत सोई ॥
धर्म आदिते सुख दुख भोगा । अनालंब जानो सब लोगा ॥
इनमेंते जो सन्मुख होई । आलंबन कर जानों सोई ॥
ताते प्रकट वासना जैसी । आलंबन अनुरूप सुतैसी ॥
जिमि कामिनि आलंबन कामा । रूप आदि सबविषयललामा

दो०—होय प्रभाव जिहि कालमें, हेतु फलाश्रय सर्व ।
तब प्रभाव सब वासना, होत रहत नहिं सर्व ॥

अर्थ—धर्म पुण्य आदि सुखका हेतु अधर्म पापादिक दुःखका हेतु हैं सुखसे राग और दुखसे द्वेष और रागमें प्रीति द्वेषमें क्रोध होता है इन सबकी मूल अविद्या है उसीके आश्रित होनेसे हेतुके तुल्य फल होता है धर्मसे सुख अधर्मसे दुःख इनको

माँगनेवाला आश्रय मनको जानना चाहिये इनमेंसे जो मनके सन्मुख होता है वह आलंबन कहाता है जैसा आलंबन होता है वैसीही वासना प्रकट होती है जैसे कामिनी कामकी आलंबन है उसके रूप आदिकके देखनेसे कामदेवकी प्रकटता होती है तैसेही आलंबनके अनुकूल वासना प्रकट होती हैं जिस कालमें हेतु फल और आश्रयादि सबका अभाव होता है उस कालमें सब वासनाओंकाभी अभाव होता है फिर वासना उत्पन्न नहीं होती। यदि यह संशय हो कि असत्‌का भाव और सत्‌का नाश नहीं होता फिर सत् वासनाओंका अभाव कैसे होगा इसका समाधान आगे करते हैं॥११॥

अतीतानागतस्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥ १२ ॥

दो०-भूत अनागत वस्तु सब, विद्यमान निज रूप।
धर्मकालके भेदते, नहिं विरोध अनुरूप॥

अर्थ-अतीत और अनागत सब वस्तु अपने निजरूपमें विद्यमान रहती हैं धर्म और कालके भेद होनेसे कुछ विरोध नहीं होता॥

भा. दो.-कालभेदते धर्मको, भूत अनागत सोत।
सत न होत यदि युग्म ये, वर्तमान किमि होत॥

छन्द-असतकी उत्पत्ति नाहिं और सत्त अव्यय मानिये।
कालके तिहुं भेदते तिहि उदय और लय जानिये॥
सूत्रमें पुनि कह्यो ऐसो भूत भवि अनुमानिये।
जो कहूं कोउ कहै शंका भूत भवि सत नाहिं ये॥
मत जान कोऊ यथार्थ भूत भवि सत रूप हैं।
जो नहीं सत होत तो किमि ज्ञान इनके रूप हैं॥
असत है फल हीन और सत फलप्रदाता सत्य हैं।
कालके सब भेदको मत मान असत अनित्य हैं॥

अर्थ-कालके भेदसे धर्म जो सत् है उसको भूत अनागत होता है यदि भूत भविष्यत् सत न होते तो इनका ज्ञान और वर्तमान होनेकाभी ज्ञान न होता। असत्‌का संभव नहीं और सत्‌का नाश न होनेसे अविनाशी है कालके भेदसे सत्‌का उदय और लय होता रहता है सूत्रमें ऐसा कहा है कि भूत और भविष्यत्‌कालका

भेद है इससे यह शंका हो कि भूत भविष्यत् असत् हैं तो ऐसा कहना यथार्थ नहीं भूत भविष्यत सत्‌रूप हैं जो असत होते तो इनके स्वरूपका ज्ञान कैसे होता असत् फलहीन है और सत् फलका देनेवाला है इसलिये कालके भेदोंको असत् और अनित्य न जानना चाहिये । यदि भूत भविष्यत् सत् हैं तो उनका स्वरूप कैसा है इसे आगे कहते हैं ॥ १२ ॥

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

सो०—ते सूक्षम अरु व्यक्त, गुण आत्मा तिहिं जानिये ।
वर्तमान है व्यक्त, भूत भविष्याति सूक्ष्म अति ॥

अर्थ—वह भूत वर्तमान भविष्यत् गुणोंकी आत्मा है और वर्तमानकाल व्यक्तरूप है और भविष्यत्‌काल और अतीतकाल ये दोनों अत्यंत सूक्ष्मस्वरूप हैं ॥

भा.दो०—मृतिका अरु तंदुल रुई, ये सब भिन्न प्रत्येक ।
सबकर सम परिणाम किमि, बहुगुणकृत नहिं एक ॥
उत्तरमें वर्णन करत, जैसे बाती तेल ।
दीपकमें सबके जुरे, हुइ परिणाम अकेल ॥

अर्थ—यदि ऐसा संशय होय कि अनेकका एक परिणाम कैसे हो सक्ता है जैसे मृत्तिका तंदुल और रुई ये सब प्रत्येक भिन्न पदार्थ और गुणवाले हैं इन सबका परिणाम एक कैसे हो सक्ता है तो इसका उत्तर यह है कि बहुतोंकाभी एक परिणाम होता है जैसे तेल बत्ती दीपक इनका एक दीपक परिणाम है इसी प्रकार मृत्तिका और तंदुल रुईकी एकत्रतासे जो वस्तु निर्मित होगी वही उसका परिणाम होगा इसी प्रकार अनेकका एक परिणामभी होता है इसीको सूत्रकार आगे कहते हैं ॥१३॥

परिणामैकत्वाद्वस्तुत्वम् ॥ १४ ॥

दो०—परिणामहुकी ऐक्यता, एकहि वस्तु कहात ।
भिन्न भिन्न अज्ञानसों, ज्ञान एक दर्सात ॥

अर्थ—परिणामके एक होनेसे वस्तुका एकत्व होना प्रतीत होता है अज्ञानदशामें पृथक् २ और ज्ञानकालमें एकही वस्तु प्रतीत होती है ॥

भा.चौ.–पृथिवीके सब कार्यनमाहीं । जुदो नहीं परिणाम दिखाई ॥
तिमि जानो अप तेज अकाशा । वायुकार्य सोइ रूप प्रकाशा ॥
पशू वृक्ष पर्वत कहँ देखा । जानत इक परिणाम विशेषा ॥
इहि प्रकार अन्यत्रहु जानो । तिहिमें भेद विज्ञता मानो ॥
अर्थ न कछु विज्ञता माहीं । विन विज्ञान अर्थ कछु नाहीं ॥
अर्थ विना विज्ञान प्रकटसो । स्वप्न आदिमें कल्प्य वस्तु जो ॥
इहिं प्रकार जाग्रतमें जानो । वास्तवमें कछु अर्थ न मानो ॥
अर्थते पृथक जान विज्ञाना । तिहि कारण मुनिसूत्र बखाना ॥

अर्थ–जैसे पृथिवीके कार्य पशु पक्षी वृक्ष पर्वत आदिका एकही परिणाम है तैसेही आकाशादिके शब्दादिकका भी एकही परिणाम जानना चाहिये इसी प्रकार अन्यत्रभी माननीय है इसमें भेद होनेका कारण विज्ञान है विना विज्ञानके अर्थ कुछ वस्तु नहीं विज्ञानही अर्थरूप है विना विज्ञानके अर्थ स्वप्नमें कल्पित वस्तुके समान है इसी प्रकार जाग्रतमेंभी जानो वास्तवमें अर्थ कुछ वस्तु नहीं विज्ञानसे अर्थ पृथक् नहीं है इसके प्रतिषेधके लिये आगे सूत्र कहते हैं कि विज्ञानसे अर्थ भिन्न अर्थात् पृथक् है विज्ञान अर्थका रूप नहीं ॥ १४ ॥

वस्तुसाम्येऽपि चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पंथाः ॥ १५ ॥

सो०–सम वस्तू जो होंय, तोहू चितके भेदते ।
तिनके मारग दोय, भिन्न भिन्न अनुमानिये ॥

अर्थ–समानरूप वस्तु होनेमेंभी चित्तके भेद होनेसे दोनोंके मार्ग पृथक् पृथक् जानने चाहिये ॥

भा. चौ.–जैसे एक त्रियाके संगा । पतिको सुख दुख सवतिप्रसंगा ॥
कामी मोह ज्ञानि निष्कामा । मारग भिन्न चित्त इक भामा ॥
इत्यादिक चित वस्तूभेदा । भिन्न अर्थ और ज्ञान विभेदा ॥
विज्ञानीके मतमें एका । है विज्ञान अर्थ नाहिं छेका ॥
सुख सम अर्थ भोग्यको जानो । ज्ञान संगतिहि भिन्न न मानो ॥
यदि होय भिन्न ज्ञानते अर्था । जडस्वरूप नहिं सिद्ध कुतर्का ॥

ज्ञानकालमें अर्थ प्रकाशा । ज्ञान गये नहिं अर्थ विभाषा ॥
ज्ञानसमयमें प्रकटत सोई । पाछे भाव अर्थ नहिं होई ॥

दो०—अर्थ पृथक् विज्ञानते, मुनिवर कहत प्रमान ।
कहत सुनहुँ तुम कान दे, अर्थ पृथक अनुमान ॥

अर्थ—वस्तुके एक सम होनेमेंभी चित्तके भेद होनेसे चित्त व वस्तु भिन्न भिन्न है दोनोंका एक होना सिद्ध नहीं होता जैसे एक स्त्रीके संग उसके पतिको सुख सवतिको दुःख कामीको मोह ज्ञानीको निष्काम अर्थात् विराग इत्यादिक एकही पदार्थमें चित्तके भेद होनेसे अर्थ और विज्ञान भिन्न हैं और विज्ञानीके मतमें एक हैं विज्ञान और अर्थ एकही है अर्थ भोग्यरूप होनेसे सुखके समान अर्थज्ञानके साथही है ज्ञानसे अर्थ पृथक् नहीं यदि पृथक्भी है तो जड पदार्थके तुल्य होनेसे विना विज्ञानके प्रकाश नहीं होता ज्ञानकालमेंही अर्थका प्रकाश होता है इससे अर्थ कुछ पदार्थ नहीं इसके उत्तरमें विज्ञानसे अर्थको पृथक् होना सप्रमाण वर्णन करते हैं ॥१५॥

न चैकचित्ततंत्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥१६॥

दो०—एक चित्त आधीन जो, वस्तु नित्यता जान ।
तो अनिष्ट तिहि चित्तके, किमि अनित्य इव मान ॥

सो०—एक चित्त आधीन, वस्तू कोउ नहिं होत है ।
तो प्रमाणते हीन, कैसे ताको मानियें ॥

अर्थ—एक चित्तके आधीनही जो वस्तु अर्थात् अर्थकी नित्यता मानी जाय तो उस चित्तके नष्ट हो जानेसे उस वस्तु अर्थात् अर्थको अनित्य मान लें नहीं एक चित्तके आधीन कोई वस्तु व अर्थ नहीं तो विना प्रमाणके वस्तु तथा अर्थकी अनित्यता कैसे मान लेने योग्य है ॥

भा. छं०—आधीन इकचित ज्ञान अरु सब वस्तु अथवा अर्थको ।
मानहु जो लेंय ऐसो देख घट जिहि चित्तको ॥
घट त्यागि पुनि पट पेख घट प्रत्यक्ष कैसे होत है ।
अन्यको घट अन्यको पट होत चित्त उद्योत है ॥

एकचितते बोध जो नहिं होत दूसर चित्तके ।
व्याप्य व्यापक भावते सब ज्ञान पूर्व निमित्तके ॥
अवयवीके बोधते सब होत अवयव ज्ञान जिमि ।
अर्थ और विज्ञानको सब बोध मानहु छान तिमि

दो०—अर्थ अरु चित्त स्वतंत्र दोउ, तिनको जो संबंध ।
बोध होत जा वस्तुको, पुरुषभोग स्वच्छंद ॥

अर्थ—यदि एक चित्तके आधीन ज्ञान व वस्तु तथा अर्थको मानभी लिया जाय तो जो घटका देखनेवाला चित्त घटमेंसे हटकर पटके आधीन हो जावे अर्थात् घटको त्यागकर फिर पटमें लग जानेसे घटका प्रत्यक्ष न होना चाहिये परंतु घटके प्रत्यक्ष होनेसे जाना जाता है जो चित्त घट छोडकर पटका प्रत्यक्ष करता उससे अन्य चित्त-को घटका प्रत्यक्ष होता है एक चित्तसे घट त्याग देनेसे घटका अभाव नहीं होता किंतु अन्य चित्तसे घटका प्रत्यक्ष होता है जिस पदार्थका बोध एक चित्तसे नहीं होता उसी पदार्थका बोध दूसरे चित्तसे होता है व्याप्य और व्यापक भावसे सब पूर्व निमित्तका ज्ञान होता जैसे अवयवीके ज्ञान हो जानेसे अवयवका ज्ञान होता है तैसेही अर्थ और विज्ञानका बोध जानना चाहिये अर्थभी स्वतंत्र और चित्तभी स्वतंत्र है और दोनोंके संबंधसे जो ज्ञान होता है वह ज्ञान पुरुषका भोग है ॥ १६ ॥

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ १७ ॥

दो०—वस्तुके उपरागते, होत वस्तुको ज्ञान ।
चित्त अपेक्षा जासुमें, तासु ज्ञान नहिं आन ॥

अर्थ—जिस वस्तुमें चित्तका उपराग होता है उसकी अपेक्षा होनेसे उसीका ज्ञान होता है जिसमें अपेक्षा नहीं उसका ज्ञान नहीं होता ॥

भा. दो.—जैसे चुम्बक लोहको, खैंचहि अपनी ओर ।
तैसे वस्तू विषयजड़, आकर्षहि चित चोर ॥

छन्द—वस्तुके सब विषय खैंचत चित्तको अति प्रीतिसों ।
प्रीति जामें होत ताको ज्ञान नहिं विपरीतिसों ॥

वस्तुको जो ज्ञान और अज्ञान चितमें होत है ।
हेतु तिहितें चित्तको परिणामसिद्धि उद्योत है ॥

अर्थ-जैसे चुम्बक अपनी शक्तिसे लोहको खींचता है, तैसेही वस्तुविषय जड होनेपरभी उनकी शक्ति चित्तचैतन्यको आकर्षण करती है वस्तुओंके विषय प्रीति होनेके कारण चित्तको खैंचते हैं इसलिये जिस वस्तुमें और विषयमें प्रीति होती है उसीका ज्ञान होता है इसके विपरीत प्रीति न होनेसे ज्ञान नहीं होता वस्तुका जो ज्ञान और अज्ञान चित्तमें होता है वस्तुओंके ज्ञात और अज्ञात होनेसे चित्तका परिणामी होना अर्थात् बदलनेवाला सिद्ध होता है ॥ १७ ॥

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥ १८ ॥

दो०-परिणामी नहिं चित्त प्रभु, सदा जान चितवृत्ति ।
परिणामी प्रभु होत यदि, तो कस ज्ञानप्रवृत्ति ॥

अर्थ-चित्तका प्रभु पुरुष परिणामी नहीं होता वह सदा चित्तकी वृत्तियोंको जानता है यदि चित्तका स्वामी पुरुष परिणामी होता तो पूर्वकालमें भोग किये हुए विषयरूप चित्तकी वृत्तियोंको कैसे जानता अर्थात् नहीं जान सक्ता ॥

भा. दो०-भूतकालमें सुःख दुख, भये पुरुष कहु जोइ ।
विन श्रम उपजत सुमिर तव, शेष रहत नहिं कोइ ॥

सो०-परिणामी जो होत, कैसे सुमिरत दुःख सुख ।
चितसम पुरुष न जोत, परिणामी कहँ पुरुष किमि ॥

अर्थ-भूतकालमें जो पुरुषको दुःख सुख हो चुका है विनाही कष्टके वह उसको जान लेता है उसमें कुछ शेष नहीं रहता यदि पुरुष परिणामी बदलनेवाला होता तो उसको पूर्वकालमें भये सुखदुःखका स्मरण कैसे होता पुरुष चित्तके समान परिणामी नहीं है फिर पुरुषको परिणामी कैसे कह सक्ते हैं अर्थात् पुरुष परिणामी नहीं है ॥ १८ ॥

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

दो०—स्वयं प्रकाश न जानिये, चित्त दृश्यको रूप ।
दृश प्रकाशकों देत है, पुरुशप्रकाशस्वरूप ॥

अर्थ—दृश्य और चित्त दोनों स्वयंप्रकाश नहीं हैं इन दोनोंका प्रकाश देनेवाला प्रकाशरूप पुरुषको जानना चाहिये ॥

भा. दो०—विन कर्ता और कर्मके, क्रिया कराहि किमि कोइ ।
आत्मा कर्ता कर्म चित, क्रिया प्रकाश न होय ॥

अर्थ—जैसे विना कर्ता और कर्मके क्रियाका प्रकाश नहीं होता तैसेही प्रकाशरूप क्रियाका विना आत्मा कर्तारूप और चित्तकर्मरूपके प्रकाशक्रियाका प्रयोग नहीं होता इसी प्रकार प्राणीको अपने चित्त वा बुद्धि और व्यापार व ज्ञेयवस्तुके संबधसे ऐसा ज्ञान होता है कि मैं सुखी हूं मैं दुखी हूं इत्यादि ॥ १९ ॥

एकसमये चोभयानवधारणम् ॥ २० ॥

दो०—एक कालमें होत नहिं, युग पदार्थको ज्ञान ।
तैसेहि आत्मा चित्तको, होत न दोऊ भान ॥

अर्थ—एक समयमें अपनी आत्मा और चित्तका धारण अर्थात् ज्ञान नहीं हो सक्ता जैसे एक कालमें दो पदार्थका ज्ञान नहीं होता ॥

भा.दो०—जबहि अविद्यावश भये, भूलत आत्मा जोइ ।
मोह क्रोधकों आपनो, मान लेत पुनि सोइ ॥
हुइ विवेकते आपनो, निज आत्माको ज्ञान ।
ताते भेद प्रकाश्य अरु, क्रिया प्रकाशक जान ॥

अर्थ—जब अविद्यासे अपने आत्माको भूल जाता है तब क्रोध और मोहादिकको अपनां मान लेता विवेक होनेपर अपने आत्माको जाननेसे प्रकाश्यक्रिया और प्रकाशक पुरुषका भेद होना प्रतीत होता है ॥ २० ॥

चित्तान्तरदृश्यत्वे बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः
स्मृतिसंकरश्च ॥ २१ ॥

दो०—अन्य चित्तते अन्यको, माने जो कहुँ ग्राह्य ।
चित्त चित्तको संग अति, स्मृतियोग कहाय ॥

अर्थ—अन्य चित्तसे अन्य चित्तको ग्राह्य माना जाय तो चित्त व अन्य चित्तके अतिप्रसंगसे स्मृतिसंकर अर्थात् स्मृतियोंका योग होता है ॥

भा. छं०—अन्य चितकी दृश्यताते बुद्धिमें अतिसंगधी ।
और स्मृति योग जानहु अनवस्थित दोषधी ॥
चित्त द्रष्टा दृश्य मानत पाव कहुँ विश्राम नहिं ।
एक बुद्धी द्वितीयको और द्वितीय जानो तृतीयमहिं ॥
तृतीय जान चतुर्थमें इमि पार कबहुँ न पावहिं ।
एक ज्ञाता नहिं ठहरत ताहि कारण गावहीं ॥
पुरुष स्वामी चित्तको सुनु मानकर सब मानहीं ।
दोष कोऊ होत नाहीं सत्य मुनिवर छामहीं ॥

अर्थ—यदि चित्तसे पृथक् कोई पदार्थ न माना जाय चित्तही द्रष्टा व चित्तही दृश्य मान लिया जाय अर्थात् एक चित्तको द्रष्टा व अन्यको दृश्य माना जाय तो बुद्धिरूप चित्तका अन्य चित्तरूप बुद्धिसे ग्रहण किया जाना माना जायगा एकसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी व तीसरीसे चौथीका ग्रहण करना मानते चले जानेसे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होनेसे विश्राम न होगा इस प्रकारसे एक द्रष्टा अर्थात् ज्ञान नहीं ठहरता इसलिये चित्तका स्वामी पुरुष अनुमानसे सिद्ध होता है इसमें कोई दोष न होनेसे पुरुष द्रष्टा अर्थात् ज्ञाता है चित्तसे पृथक् है वही चित्तका स्वामी भोक्ता जानना चाहिये ॥ २१ ॥

चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ
स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २२ ॥

दो०—इन्द्रिनके संचारते, पुरुष रहित जब होइ ।
निज स्वरूप अनुरूपसो लखत बुद्धिको सोइ ॥

अर्थ—इन्द्रियोंके संचारसे जब पुरुष रहित होता है, तब ब्रह्म पुरुष बुद्धिको अपनेही तुल्य देखता है ॥

भा.दो०-पुरुष शक्ति परिणामते, रहित जानिये तात।
बुद्धीके आकारको, प्राप्ती भये लखात॥
कहत पुरुषकी बुद्धिको, संवेदन अनुमान।
ताहीको तुम पुरुषकी, बुद्धि वृत्ति जिय जान॥
अमित क्रियापरिणामयुत, जैसी बुद्धी होय।
तिहि समान भासत पुरुष, धीसंवेदन सोय॥
जैसे जलमें चंद और, निराकार आकाश।
भासत तैसे पुरुषमें, बुद्धीवृत्ति प्रकाश॥

अर्थ-पुरुषका चित्त परिणामसे रहित है उसको बुद्धिके आकारको प्राप्त होना अर्थात् अनेक परिणामोंको प्राप्त होनेवाली बुद्धिके तुल्य भासित होना पुरुष और बुद्धिका संवेदन कहाता है जैसे जलमें चंद्रमा तथा निराकार आकाश भासित होता है तैसेही पुरुषमें चित्त व बुद्धिका भासित होना बुद्धिसंवेदन जानना चाहिये॥२२॥

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्॥२३॥

दो०-द्रष्टु दृश्य उपरक्त चित, सर्वारथ जिहि नाम।
स्फटिकासम तिहि रूप है, जस रंग तस हुइ ज्ञान॥

अर्थ-द्रष्टा पुरुष दृश्य अर्थात् शब्दस्पर्शादि विषय इनमें जब चित्त उपरक्त होता है तब चित्त सर्व अर्थरूप कहाता है जब चित्त द्रष्टामें उपरक्त होता है तब द्रष्टाके आकारसे प्रतीत होता है और इन्द्रियोंके द्वारा जब दृश्यमें उपरक्त होता है तब दुःख सुख भोगरूपसे दृश्यके तुल्य प्रतीत होने लगता है चित्तका द्रष्टा और दृश्यमें उपरक्त होनेसे चित्त सर्वार्थरूप कहाता है॥

भा. छं०-द्रष्टु दृशि उपरक्तताते चित्त सर्वारथमयं।
पुरुष चेतन द्रष्टु अरु शब्दादि मानहु दृशिचयं॥
चित्त जिहिं जिहिं विषयमें उपरक्त रागी होत है।
आकार तिहिं तिहिं रूप भासित होत रहत उद्योत है॥
जब चित्त द्रष्टा पुरुषते उपरक्तताको गहत है।
इन्द्रियादिक द्वारते दृशि रक्तताको लहत है॥

दुःख सुख दृश रक्तताते चित्तमें भासत रहै ।
ताहि कारण कहत मुनि सर्वार्थता चितमें वहै ॥

दो०—द्रष्टामें कोउ दोष नहिं, दोष दृश्यसंयोग ।
स्फटिकासम चित शुद्ध है, जब हुइ दृश्यवियोग ॥

अर्थ—द्रष्टा पुरुष दृश्य शब्दादिविषय इनमें चित्त उपरक्त होनेसे सर्व अर्थरूप कहाता है जिस जिस विषयमें चित्त रागी होता है तिसी रूपसे चित्त भासित होता है जब चित्त द्रष्टा पुरुषसे उपरक्त होता है तब पुरुषाकार होता है और जब इन्द्रियादिकके द्वारा दृश्यकी उपरक्तताको ग्रहण करता है तब दृश्यकी रक्ततासे दुःख सुख भोगरूप दृश्यके अनुसार चित्त भासित होता है इसीसे चित्तको सर्वार्थरूप कहा गया है द्रष्टामें कोई दोष नहीं है दृश्यके संयोगसे दोष प्रतीत होता है चित्त स्फटिकके समान शुद्ध है जब दृश्यसे चित्तका वियोग होता है तब चित्त शुद्धस्वरूप है ॥२३॥

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्य कारित्वात् ॥ २४ ॥

दो०—इन्द्रियके संबंधते, पुरुष रहित पर अर्थ ।
अमित वासना चित्र चित, लखि भ्रम तावत व्यर्थ ॥
ग्रहस्वामी गृह वसत जिमि, भोगत चित्रित भोग ।
सो पदार्थते भिन्न जिम, देह पुरुष संयोग ॥

अर्थ—इन्द्रियसंबन्धसे रहित होनेसे असंख्य वासनाओंसे चित्रित होनेपरभी चित्तपर अर्थात् पुरुषके भोगके अर्थ है क्योंकि जैसे गृहस्वामी गृहमें वसकर नाना भोगोंको भोगता है परन्तु सबसे भिन्न है इसी प्रकारसे पुरुष दुःख सुखका भोग करनेवाला होकरभी इन्द्रिय और विषयोंसे पृथक् है ॥ २४ ॥

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥ २५ ॥

सो०—दीर्घ ज्ञानते जान, आत्मभावकी भावना ।
तब प्रवृत्तिकी हान, पावत पुरुष निवृत्तिसुख ॥

दो०-जैसे वर्षाके विषैं, तृण अंकुरको पेखि ।
भान होत है बीज तिमि, मोक्षमार्गको देखि ॥

अर्थ-विशेष ज्ञानसे आत्मभावकी भावना होती है तब प्रवृत्तिकी हानि और निवृत्तिका सुख प्राप्त होता है जैसे वर्षाकालमें तृण और अंकुरोंको देखकर बीजका भान होता है इसी प्रकार मोक्षमार्गके देखनेसे ज्ञानीको आत्माकी भावना होती है ॥

भा. चौ.-दीर्घ दर्शि लक्षण यह जानो । सुनतहि मोक्षमार्ग हर्षानो ॥
अश्रुपात रोमांच होत तन । पावत तत्वज्ञान अपने मन ॥
आत्मभाव भावना तोई । क्लेश अरु कर्मनिवृति कर सोई ॥
तब उपजत मनमाहि रुचि ऐसी । मैं हों कौन मोर मति कैसी ॥
ये सब कहां कहांते आयो । कवन कर्मकर यह फल पायो ॥
कवन दुःख सुख करहु विचारा । सब दुख जहां लगि स्वर्गपसारा ॥
केवल सुखस्वरूप अपवर्गा । दुखद जान संसृतिकर सर्गा ॥
निवृतिमार्ग दुखसागर सेतू । सुगम पवित्र मोक्षकर हेतू ॥

अर्थ-विशेषदार्शी अर्थात् ज्ञानीका यह लक्षण है कि मोक्षमार्गको सुननेसे उसको ऐसा हर्ष होता है कि उसके नेत्रोंसे अश्रुपात और रोमांच होता है और तत्वज्ञान होनेसे उसे आत्मज्ञानकी भावना होती है इससे उसके क्लेशकर्मकी निवृत्ति हो जाती है तब उसके मनमें ऐसी रुचि होती है कि मैं अपनेको जानूं मैं कौन हूं और मेरी बुद्धि कैसी है ये सब जो मैं देखता हूं क्या है और यह कहांसे आया और किस कर्मके फलसे यह सब पाया है कौन दुःख और कौन सुख है इसको विचारसे देखूं विचारद्वारा जानता है कि जहांतक स्वर्गका पसार और यह सब जो देखा और सुना जाता है दुःखरूपही है सुखस्वरूप तो केवल मोक्षही है यह संसृति सर्ग सब दुःखदाई है और इन और इन दुःखोंसे छूटनेका उपाय तो निवृत्तिमार्ग संसृतिसे तरनेके लिये पुलरूप है और सुगम पवित्र मोक्षका देनेवाला है ऐसी रुचिके होनेसे चित्तके धर्मोंसे रहित होकर अपने शुद्धरूपको प्राप्त कर लेता है ॥ २५ ॥

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ २६ ॥

दो०-ज्ञानीको चित मोक्षते, पूर्वहि होत गँभीर ।
विषयवासनारहित सो, आत्मभावना तीर ॥

जैसे गरुआ होत चित, विषयभोगको पाय ।
तैसेहि नासत कर्मके, निवृतिज्ञान गरुआय ॥

अर्थ—ज्ञानीका चित्त मोक्ष होनेसे पूर्वही विवेकके भारसे निम्न होता है उसकी विषयवासना नष्ट होकर आत्मभावकी भावनासे भारी हो जाता है। जैसे विषयों और भोगोंसे चित्त गरुआ होता है तैसेही निवृत्तिज्ञानसे सब कर्मोंके नाश हो जानेसे हलका होकर विवेकभारसे निम्न अर्थात् निश्चल हो जाता है ॥ २६ ॥

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २७ ॥

दो०—जो विवेक निश्चल नहीं, रहत छिद्र तामाँहि ।
संस्कारते पलट पुनि, मैं अरु मोर कहाँहि ॥
भेदरहित चित थिर भये, छिद्र रहत नहिं कोइ ।
होत भेद विज्ञानकृत, छिद्र लहत अति सोइ ॥

अर्थ—जो विवेक निश्चल नहीं होता तो उस विवेकमें छिद्र रह जाता है ऐसा सछिद्र विवेक पलटकर मेरा तेरा कहने लग जाता है ॥

भा. दो.—संसकारछिद्रनविषैं, प्रत्यय प्रकट कराँहि ।
ज्ञान छांडि अज्ञानवश, पुनि चित विषय भ्रमाँहि ॥

अर्थ—जब भेदरहित चित्त स्थिर हो जाता है तब उसमें कोई छिद्र नहीं रहता विज्ञानसे भेद होता है और भेदसे छिद्र होता है छिद्र पाकर संस्कारसे अनेक प्रत्यय प्रकट होते हैं ज्ञानको छोडकर फिर चित्त विषयोंमें भ्रमण करने लगता है ॥ २७ ॥

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ २८ ॥

सो०—संस्कारकी हान, क्लेशनाशसम कहत मुनि ।
पक्क होत जब ज्ञान, नसत क्लेश व्युत्थान सब ॥

अर्थ—संस्कारकी हान और क्लेशोंका नाश समानही है जब ज्ञान परिपक्क हो जाता है तब क्लेशव्युत्थान सब नाश हो जाता है ॥ २८ ॥

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथाविवेकख्यातेर्धर्म-मेघः समाधिः ॥ २९ ॥

सो०-प्रसंख्यानको पाय, इच्छा नहिं जिहिं सिद्धिकी ।
कुत्सित विषय विहाय, विवेकख्यातिते सर्वथा ॥
पावत फल कैवल्य, कर्म अशुक्ल अकृष्णकर ।
धर्ममेघसमतुल्य, लहै समाधिक अक्षयसुख ॥

अर्थ-जो तत्व व पुरुषका यथार्थ ज्ञान है उसे प्रसंख्यान कहते हैं सो प्रसंख्यानको पाकर जो सिद्धियोंकी इच्छा नहीं करता उसको सर्वथा विवेकख्यातिसे धर्ममेघसमाधि जिसके केवल अशुक्ल अकृष्ण कर्म व कैवल्यफल है प्राप्ति होती है और कुत्सित विषय सब नष्ट हो जाते हैं और संस्कारका बीज नष्ट हो जानेसे फिर प्रत्ययोंकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ २९ ॥

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥

दो०-धर्ममेघसमाधिते, होत क्लेशकी हान ।
जन्ममरणके दुःखते, सहज निवृत्ती जान ॥

अर्थ-धर्ममेघसमाधिसे सब क्लेशोंकी हान होती है और जन्ममरणके दुःखसे सहजमें निवृत्ति हो जाती है ॥

भा.छं.-धर्ममेघसमाधिते निरवृत्ति क्लेश अरु कर्म सब ।
क्लेशकर्म निवृत्तिते जन पाव जीवनमुक्ति तब ॥
लेत नहिं पुनि जन्म और नहिं मरत जगमें आयके ।
अज्ञान कारण नसत जब तब जन्म कैसे पायके ॥

अर्थ-धर्ममेघसमाधिसे क्लेश और कर्मोंकी निवृत्ति होती है और क्लेश व कर्मोंकी निवृत्तिसे जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है वह फिर इस संसारमें आकर न जन्म लेता न मरता है जन्ममरणका कारण जो अज्ञान उसके नाश होनेसे उसका जन्म नहीं होता ॥ ३० ॥

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥ ३१ ॥

दो०-तब सब मळ आवर्ण कर, होत नाश अति शुद्ध ।
पावत ज्ञान अनंतके, ज्ञेय अल्पसम बुद्ध ॥

अर्थ-तब सब क्लेश कर्मरूप आवरणमलोंके नाश हो जानेसे योगी अनन्त ज्ञान पाता है और ज्ञेय अर्थात् जानने योग पदार्थ उसको अल्प समान प्रतीत होते हैं अर्थात् उनको सुगमतासे जान लेता है ॥ ३१ ॥

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३२ ॥

दो०-धर्ममेघसमाधिके, उदय भये पर तात ।
गुणकृतार्थता पाप कर, क्रमपरिणाम नसात ॥
गुणप्रवृत्तिसों होत हैं, भोग मोक्ष दुखसुःख ।
भोग अनंतर ज्ञानते, जीवनमुक्ति सुमुख्य ॥
सो०-मुक्तिअवस्था पाय, गुणकृतार्थ हुइ रहत नहिं ।
गुण अस्थिर न रहाय, पुनि प्रवृत्ति नहिं कर सकहिं ॥

अर्थ-धर्ममेघसमाधिके उदय होनेसे कृतार्थ गुणोंके परिणामका क्रम नाश होता है गुणोंकी प्रवृत्तिसे भोगमोक्षसुख और दुःख होता है भोगके अनन्तर ज्ञान होनेसे जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है । जीवन्मुक्ति प्राप्त होजानेपर गुण कृतार्थताको पाकर फिर एक क्षणभी स्थिर नहीं रहते अर्थात् नाश होनेके कारण फिर प्रवृत्ति नहीं कर सक्ते गुणोंकी प्रवृत्ति भोग और मोक्षके निमित्त होती है जब भोगके अनन्तर ज्ञान होनेसे अर्थात् वैराग्यके द्वारा जीवन्मुक्ति प्राप्त होगई । मुक्तिप्राप्ति हो जानेसे गुण अपने अर्थको पूर्ण कर चुके इससे गुण कृतार्थ होकर फिर गुणोंकी समाप्ति हो जाती है समाप्त होनेसे फिर उनकी प्रवृत्ति नहीं होती ॥ ३२ ॥

क्षणप्रतियोगी परिणामापरांतनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३३ ॥

दो०-क्षण प्रति है संयोग, पूरवते उत्तर क्षणहु ।
अहै ग्रहणके योग, क्रम परिणामपर्यंतलों ॥

अर्थ-हर एक क्षणका परस्पर संयोग है अर्थात् पूर्व क्षणोंके अभाव होनेसे उत्तरके क्षणोंका संबंध होता है यह क्रम परिणामके अंततक ग्रहण योग्य है ॥

भा.चौ.-पूरव क्षिण अभाव जब होई । उत्तर क्षण प्रगटन है सोई ॥
इहि प्रकार क्षणकर संसर्गा । होत रहत जबलगं अपवर्गा ॥
जइ अपवर्गप्राप्ति क्रम अंता । ग्रहणयोग्य परिणामपर्यंता ॥
क्रम अतिगूढ समुझ नहिं परई।आदि मध्य कछु बोध न करई
जब परिणाम अंतक्षिण आवै । तब विज्ञान क्रम न दर्सावे ॥
सूक्ष्मते स्थूल होत जब । मान होत प्रत्यक्ष रूप तब ॥
जैसे घट पट होत पुराना । कालांतरको पाय चिराना ॥
नित नहिं जीरणता दिखराई । होत नित्यप्रति जीर्ण सदाई ॥

दो०-जैसे बालक जन्मते, नितप्रति बाढत जात ।
नित्य प्रति न लखात सो, कालांतर दिखरात ॥

चौ०-क्षणक्षणप्रति नूतन परिणामा । क्रमपरिणाम जान गतिधामा ॥
जो परिणाम नित्य कर जानो । शंका होत नित्य कस मानो ॥
तो उत्तर सुन होहु निसंका । द्वै प्रकार परिणाम सुअंका ॥
कूटस्थिति परिणामनित्यता । पुरुषबुद्धिगुणकेर मित्रता ॥

दो०-प्राप्त भये परिणामके, तत्वनाश नहिं होत ।
नित्य वस्तु सोई अहै, सदा रहत जिहि जोत ॥
पुरुष और गुण नसत नहिं, तत्व नित्य परकाश ।
याते दोऊ नित्य है, मानहु कर विश्वास ॥
प्रश्न उदय अस होतहैं, गुणस्थिति गतिमाहिं ।
वर्तमान संस्कार क्रम, है समाप्त के नाहिं ॥
प्रश्न जान त्रिय भांतिके, इक वचनीय विभज्य ।
अवचनीय सो जानिये, उत्तर पृथक विरज्य ॥

चौ०-इक वचनीय प्रश्न दिखरावें । भेदाभेद सकल समझावे ॥
कहा कहो यह जगत मरैगो । उत्तर इक मृतुरूप लहैगो ॥

कह सब मरहिं जन्म सब तेही । ज्ञानी बिन जन्मत सब रहहीं ॥
यह विभज्य उत्तर तुम जानो । आगे अवचनीय कर मानो ॥
कहा संसार अंत वा अनंता । उत्तर देत बनहि नहिं संता ॥
आगम शब्द कहत अस बानी । ज्ञानी अंत अनंत अज्ञानी ॥
विज्ञानी संसृतिकर अंता । लहत मोक्ष केवल निश्चंता ॥
लक्षण सुनहु मोक्षके अब सब । होत मोक्ष केवल सुख अतिसब ॥

अर्थ—जब पूर्व क्षणका अभाव होता है उत्तर क्षण प्रकट हो जाया करता है इसी तरह क्षणोंका संसर्ग अपवर्ग अर्थात् मोक्ष होनेतक होता रहता है और मोक्ष होनेके पर्यंत क्रम नष्ट हो जाता है इसलिये परिणामके अंततक क्रमका ग्रहण है यह क्रम अत्यंत गूढ है समझ नहीं पडता इसका आदि मध्य प्रतीत नहीं होता जब परिणामके अन्तका क्षण आता है तब विज्ञानसे क्रमका बोध होता है सूक्ष्मसे जब स्थूल होता है तब उसके प्रत्यक्ष स्वरूपका भान होता है जैसे घट और वस्त्रका पुराना होना कालांतरसेही जाना जाता है नित्य उस घट पटकी जीर्णता नहीं दीखती परन्तु वह नित्यप्रति जीर्ण होता रहता है जैसे बालक जन्मकालसे नित्य नित्य बढता जाता है परन्तु उसका नित्य प्रति बढना दृष्टपथ नहीं होता कालांतरमेंही वह बढा हुआ दिखाता है इसी प्रकार क्षण क्षणमें नवीन परिणाम होता रहता है यही क्रमकी गति जानना चाहिये यदि परिणामके नित्य होनेमें शंका हो तो इसके उत्तरमें सुनो परिणाम दो प्रकारका होता है एक कूटस्थ नित्यता दूसरी परिणाम नित्यता पुरुषको कूटस्थानित्यता और बुद्धि आदि गुणोंको परिणाम नित्यता है परिणामके प्राप्त होनेपरभी जिसका नाश न हो वही नित्य कहाता है जो सदा बना रहे सो पुरुष और गुणोंका नाश नहीं होता सदा इनका तत्त्व रूप बना रहता है इससे ये दोनों नित्य हैं वह विश्वास कर मानना चाहिये ऐसा कहनेसे यह प्रश्न उदय होता है स्थित रहनेकी गतिके साथ गुणोंमें जो यह संसार रहता है सो इस वर्तमान संसारक क्रमकी समाप्ति होती है वा नहीं तो सुनो प्रश्न तीन भांतिका होता है एक एकवचनीय दूसरा विभज्य तीसरा अवचनीय इन तीनों प्रश्नोंके उत्तरभी पृथक् २ हैं प्रथम एकवचनीय प्रश्नको भेदोंसहित दिखाते हैं यदि कोई प्रश्न करे कि क्या यह जगत् मरेगा तो उत्तर उसका एकही होगा हां मृत्यु पावेगा यदि कोई कहे कि क्या सब मरेंगे और सबका जन्म होगा तो उसका उत्तर यह होगा एक ज्ञानीको छोडकर सबका जन्म मरण होता रहेगा यह विभज्य प्रश्नका उत्तर है अब अवचनीयका कहते हैं क्या यह संसार अन्तवान् है वा अनन्त इसका उत्तर

देते नहीं बनता आगमशास्त्र ऐसा कहते हैं ज्ञानीको संसार गुणवान् और अज्ञानीको अनन्त है अब हम मोक्षके लक्षण कहते हैं कि जिसमें केवल सुखहीकी प्राप्ति होती है ॥ ३३ ॥

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ३४ ॥

दो०-पुरुषार्थकी शून्यता, त्रिगुणादिक लय जान ।
शेष रहत है शक्ति चित, तब कैवल्य बखान ॥

अर्थ-पुरुषार्थ जो मोक्ष उससे शून्य तीनों गुणोंका लय हो जाना अथवा चित्तशक्तिमात्र शेष रहना कैवल्य मोक्षका प्रतिष्ठित स्वरूप है अर्थात् अवस्था है ॥

भा. छं०-अपवर्गकारण प्रकृति जानो कार्य त्रिगुण महत्वकों ।
लय होत क्रमते सर्वकर और रहित बुद्धि प्रबंधसों ॥
रहत केवल आतमाकी शक्ति अपने ज्ञानमें ।
ईशमें प्रणिधान और आनंदसिद्धि समाधिमें ॥

सो०-केवल मुक्तीमांहिं, शेष रहत चितमात्रही ।
तब सब दुःख विलांहि, केवल परमानंद लहहिं ॥

अर्थ-अपवर्गका कारण गुणोंकी साम्यावस्था जो प्रकृति है उसे जानना चाहिये और महत्तत्व और गुणोंको कार्य जानो क्रमानुसार इन सबका लय और बुद्धिके बंधनसे रहित होकर केवल आत्मशक्तिका ज्ञानमात्र रहना ईश्वरमें ध्यान और समाधि सिद्धका आनंद प्राप्त होता है मुक्ति होनेपर केवल चित्तमात्रही शेष रहता है तब सब दुःख मिटकर केवल परमानंद प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

सो०-मुनिवरचरणप्रसाद, कैवल्य पाद पूरण भयो ।
सुनतहि मिटहि विषाद, पावत पर्म अनंत सुख ॥

चौ०-संवत उनविंसत और अडसठ । पौषकृष्ण आठे शनि निज मठ ॥
श्रीमत्स्वामी जगदेवाकाम । कृपासहित निरवार सकल भ्रम ॥
खटदर्शन वक्ता शुभशीला । गुण आकर निर्गुण गुणलीला ॥

भावसहित हितकर उपदेशा । व्यासभाष्य अनुवादप्रवेशा ॥
भाषाबंध करहु जगहेतू । सुगम अगम भवसागरसेतू ॥
सुन समुझहि दृढ कर विश्वासा । सहज होय भवदुखकर नासा
इमि उपदेश मोहि जब दीनो । भाषाबंध सकल मैं कीनों ॥
जो कहुं चूक परी मोपांही । सकल सुधारहु गुरुकी नाईं ॥
सो०-श्रीस्वामी जगदेव, आश्रम चरण निहोरि कह ॥
पार करहु भव खेव, अपने चरणप्रसादते ॥

अर्थ-इति महर्षिपातंजलिके चरणोंके प्रसादसे यह कैवल्यपाद पूर्ण भया इसके सुनने और समझनेसे विषाद मिटकर अनंत सुखको पाता है सम्वत् १९६७ विक्रमीय पौषकृष्ण अष्टमी शनिवारको अपने स्थानपर छःहों शास्त्रके ज्ञाता गुणवान् निर्गुण गुणवाले श्रीमत् स्वामी जगदेवाश्रमने कृपापूर्वक सब भ्रम दूर करके भावसहित हितसे ऐसा उपदेश किया कि तुम व्यास भाष्य जो पातंजलयोगदर्शनपर है संसारके हितके अर्थ भाषावद्ध करो कि जो अगम भवसागरका सुगम सेतुरूप हो जावे जो उसको सुनकर विश्वासपूर्वक समझेंगे उनके संसृतिके दुखोंका नाश सहजही हो जायगा ऐसा उपदेश मुझे किया तब उनकी कृपासे यह मुझसे भाषा छंदोबद्ध सतिलक अनुवाद किया गया है जो कहीं मुझसे चूक रह गई हो उसको मुझे शिष्य जान गुरुभावसे सुधार लेना चाहिये श्रीस्वामी जगदेवाश्रमके चरणोंको निहोरा करता हूं कि जिन्होंने मेरा यह खेवा अपने चरणोंके प्रसादसे भवसागरसे पार कर दिया ॥

श्रीगुरुचरण प्रसाद, कैवल्यपाद पूरण भयो ।
सुनतहि मिटहि विषाद, रामबकसकी विनय यह ॥

अर्थ-श्रीगुरुके चरणोंके प्रसादसे कैवल्यपाद पूर्ण हो गया अब मुझ रामभक्तकी यह विनती है कि जो पुरुष इसको सुने उनके संपूर्ण विषादोंका नाश होकर मोक्षका आनंद उनको प्राप्त हो ॥

इति श्रीपातंजलियोगशास्त्रे भाषाभाष्ये श्रीमत्पण्डितगुरुदयालस्यात्मजपण्डितरामभक्तविरचिते कैवल्यपादश्चतुर्थः समाप्तः ।

इति भाष्यभाषाटीकासहित योगदर्शन समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापाखाना, कल्याण-मुंबई.

वेदान्तग्रन्थाः।

नाम.		की.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
१२ रामगीता मूल	क	०–१॥	०–॥
१३ श्रीरामगीता भाषाटीका पदप्रकाशिका अनुवाद और विषमपदी सहित	क	०–८	०–१
१४ श्रीरामताप्नी उपनीषद्–भाषाटीका–तथा श्रीरामउपनिषद् भाषाटीका यंत्र-राजके श्लोकके अनुक्रम सहित	डा	१–०	०–२
१५ अष्टावक्रगीता सान्वय भाषाटीका	क	१–०	०–२
१६ अवधूतगीता भाषाटीका	क	०–६	०–१
१७ आत्मबोध, तत्त्वबोध, वेदस्तुतिभाषा	(१)	०–३	०–१
१८ आनन्दामृतवर्षिणी (आनन्दगिरिजीप्रणीत-गीताके कठिन स्थलोंका भाव प्रतिपादन है)	क	०–१२	०–१
१९ आत्मबोध भाषाटीका	क	०–४	०–॥
२० अद्वैतसुधा–संस्कृत सुगम अपूर्व आजतक कहांभी न छपा वेदांत ग्रंथ मुमुक्षु लोगोंको अत्यादरणीय है	क	०–१२	०–२
२१ कैवल्योपनिषद् संस्कृत	क	०–१	०–॥
२२ कपिलगीता भाषाटीका	क	०–५	०–१
२३ गीताचिद्घनानन्दस्वामिकृत गूढार्थदीपिका मूल अन्वय पदच्छेदसहित भाषाटीका	(१)	६–०	१–०
२४ गीताश्लोकार्थदीपिका अतिउत्तम टिप्पणी-सहित तैयार है गीता वाक्यार्थबोधिनी और गीता अमृततरंगिणीसेही अच्छी बनी है.	क	१–४	०–१
२५ गीता भा० टी० पाकेटबुक	क	०–८	०–३
२६ गीता आनन्दगिरीकृत भाषाटीकासह	क	२–८	०–६
२७ ” ” रफ	क	२–०	०–६
२८ गीता भाषाटीका अन्वय दोहासहितउत्तम....	क	१–४	०–३
२९ गीता भाषाटीका १२ पेजी	क	०–१४	०–२
३० गीतामृततरंगिणी भा.टी.(रघुनाथप्रसादकृत)	क	०–१४	०–२
३१ गीतामृततरंगिणी भाषाटीका पाकिटबुक	(१)	०–१०	०–१॥
३२ गीतापंचदश भाषाटीका-[काश्यपगीता, शौनकगीता, अष्टावक्रगीता, नहुषगीता, सरस्वतीगीता, युद्धिष्ठिरगीता, बकगीता, धर्मव्याधगीता, श्रीकृष्णगीतादि]	रे	०-१२	०-१॥
३३ गीता पञ्चरत्न अक्षरमोटा गुटका रेशमी अतिउत्तम ७ पंक्ती	क	१–६	०–३
३४ गीता श्रीधरीटीकासहित	*	१–०	०–२
३५ गीता बडे अक्षरकी १६ पेजी गु.	क	०–१२	०–२
३६ गीता बडे अक्षरकी ६ पंक्ती विष्णुसहित खुली	क	०–१४	०–२

नाम.		की.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
३७ गीता पंचरत्न अत्यंत बडे अक्षर खुलापत्रा	क	२—०	०—४
३८ गीता अत्यंत बडे अक्षरकी खुलापत्रा	क	१—४	०—३
३९ गीता गुटका ३२ पेजी....	क	०—७	०—१
४० गीता गुटका विष्णुसहस्रनामसहित	क	०—८	०—१
४१ " पञ्चरत्न और एकादशरत्न	क	०—१२	०—२
४२ " पञ्चरत्न द्वादशरत्न	क	०—८	०—१॥
४३ " पञ्चरत्ननवरत्न पाकिट बुक	क	०—७	०—१
४४ गीता पञ्चरत्न सप्तरत्न बुक्फेसन	क	०—१२	०—२
४५ गीता पंचरत्न भाषाटीका सहित बडा	क	१—८	०—४
४६ गीता गुटका पाकिट बुक ६४ पेजी	क	०—६	०—१
४७ गीता पंचरत्न गुटका भा० टी०	क	१—०	०—२
४८ गर्भगीता भाषाटीका	क	०—१	०—॥
४९ गणेशगीता भाषाटीकासहित	क	०—६	०—१
५० गोरखनाथपद्धती भाषाटीका (योगसाधन)	क	०—१०	०—१॥
५१ गीतारामानुज—भाष्य (संस्कृत)	क	१—८	०—४
५२ घेरंडसंहिता भाषाटीका (योगशास्त्र)....	क	०—१०	०—१॥
५३ जीवन्मुक्त गीता भा० टी०	क	०—१	०—॥
५४ तत्वबोध भाषाटीका	क	०—२	०—॥
५५ तत्वबोध शंकरानंदी भा० टी० बडा	क	०—६	०—१
५६ तत्वानुसन्धान वेदान्तका	खे	२—०	०—६

नाम.		की.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
५७ दशोपनिषद् भाषा श्रीअच्युतानंदजीकृत....	खे	२—०	०—४
५८ द्वादशमहावाक्यविवरण (मूल)	क	०—४	०—॥
५९ नारदगीता	क	०—१	०—॥
६० नारदगीता भा० टी०	डा	०—१	०—॥
६१ पञ्चरत्न अक्षरबडा लम्बी संघी खुली	क	१—४	०—३
६२ पञ्चदशी सटीक (संस्कृत टीका)	खे	२—०	०—४
६३ पञ्चदशी पं० मिहिरचंदकृत भा० टी.	खे	३—८	०—८
६४ पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश—वेदांत वर्णन (कामलिवाले बाबाकी बनाई हुई) भाषा.	खे	२—८	०—६
६५ पातंजलि (योगदर्शन) भाषानुवाद	*	०—१२	०—२
६६ पाण्डवगीता भाषाटीका	क	०—३	०—॥
६७ पाण्डवगीतामूल मध्यम	क	०—१॥	०—॥
६८ पाण्डवगीतामूल छोटी	क	०—१	०—॥
६९ प्रश्नोत्तरी भाषाटीका	क	०—२	०—॥
७० प्रश्नोत्तर मुक्तावली भाषाटीका (वेदान्त)	खे	०—३	०—॥
७१ प्रश्नोत्तररत्नमाला	क	०—२	०—॥
७२ ब्रह्मसूत्र शारीरक भाषाटीका	खे	१—४	०—३
७३ भक्तिमीमांसा शाण्डिल्यऋषिप्रणीता आचार्य-स्वप्नेश्वरविरचितेन भाष्येण संयुता	(१)	०—८	०—१

नाम.	की. रु. आ.	ट. म. रु. आ.
७४ मुक्तिकोपनिषद् मा० टी० .... क	०–६	०–१
७५ वृत्तिप्रभाकर स्वामीनिश्चलदासकृत (वेदान्तका ग्रंथ शुद्धकर नया छपाहै) भाषा .... ह	२–८	०–६
७६ वेदांत डिमडिम् .... खे	०–१॥	०–॥
७७ वैराग्यभास्कर भाषाटीका .... खे	०–८	०–१
७८ वेदान्तरामायण भाषाटीका .... (१)	१–४	०–४
७९ वेदान्तसंज्ञा भाषाटीका .... खे	०–६	०–१
८० वेदान्तग्रन्थपञ्चक वाक्यप्रदीपः वाक्यसुधारसः हस्तामलकगीर्वाणपञ्चकं मनीषापञ्चकं इमे सटीकाः (१)	०–८	०–१
८१ वेदस्तुति भाषाटीका .... क	०–४	०–॥
८२ वेदस्तुति अन्वितार्थप्रकाशिकाख्य संस्कृत टीकासहित .... क	०–४	०–॥
८३ विवेकचूडामणि (शंकराचार्यकृत) भा०टी० खे	१–०	०–२
८४ वेदांतसार संस्कृतमूल और संस्कृतटीका तथा भाषाटीकासहित .... खे	०–१२	०–१
८५ शिवस्वरोदय भाषाटीका .... क	०–८	०–१
८६ शिवसंहिता योगशास्त्र भाषाटीका .... क	१–०	०–२
८७ शतश्लोकी भाषाटीका (वेदांत) .... क	०–८	०–१
८८ शाङ्करदिग्विजय सटीक .... ज्ये	४–०	०–८
८९ शिवगीता भाषाटीकासहित .... क	०–१०	०–२
९० सांख्यदर्शन अत्युत्तम भाषानुवाद .... खे	१–४	०–२
९१ सारुक्तावली भाषामें .... क	०–३	०–॥
९२ हठयोगप्रदीपिका भाषाटीकासहित .... *	१–४	०–२

छन्दार्णवपिंगल.

यह ग्रंथ श्रीमत्सकलकविकुलसरसिजवनप्रकाशनदिवाकरश्रीरामचन्द्रभक्तिप्रकाशितान्तःकरण प्रतापगढदेशीय टर्योंगा ग्रामवासी भिखारीदासने बनाया है. इसमें मात्रावृत्त वर्णवृत्त मेरु मर्कटी पताका और प्रति छन्द लघु गुरु गणस्थापनरीति और अति रमणीय छन्दोंके उदाहरण हिन्दीभाषाकवित्वरसिकोंके उपकारार्थ अति सुगमतासे वर्णित हैं. की० १२ आना.

वैद्यविनोद मूलभाषाटीकासह.

" यथा नाम तथा गुणाः " की बात इसही ग्रंथमें पाई जाती है. क्योंकि सचमुच इस ग्रन्थमें वे परमोपयोगी और अवश्य ज्ञातव्य विषय लिखे गये हैं जिन्हें देखकर वैद्यको विनोद होता है. मूल्य २ रु० डा. म. ६ आना ।

योगदर्शनका शुद्धाशुद्धपत्र.

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
५	९	हुए	हुई
५	११	भाष्यका	भाष्यको
७	१२	नाह उठाह	नहिं उठहि
११	२०	कहाहि	कहाहिं
१४	६	गृहत	गृहत
१४	२२	अबपर	पर
१५	११	वाहिकर	गहिकर
१५	२०	छेधै	छेधै
१६	६	इनका	इनको या इनकर
१६	७	सूक्ष्म	सूक्षम
१८	१९	प्रज्ञा	प्रज्ञ
१८	२३	चय	त्रिय
१८	२४	मात्रा	यात्रा
१९	५	और	औ
१९	२२	उसे	उसे श्रद्धा होती है तब
२०	१५	करे	केर
२३	८	विराट	विराट औ
२४	८	तो	नौ
२४	९	डालनवाले	डालनेवाले
२४	१४	वात	मारुत
२४	१७	करै	केर
२४	२०	करन	करत
२४	२१	जरत	डारत
२४	२१	करहि	करहु
२५	१२	कहहिं	कराहिं
२५	२१	दोनोंके इन्हीं	इन्हीं दोनोंको
२५	२५	आवागम	आवागमन
२६	३	एकत	एक
२६	८	विपति	विपत्ति
२६	१३	सूत्रस	सूत्रसे
२७	१९	प्राण	प्राणा
२९	१६	पांय	पाय
३०	७	माहिं	महिं
३०	२४	परमहत्त्वा	परममहत्त्वा
३१	११	थिरता	स्थिरता
३१	१२	अब	अब तुम
३१	१०	सभापत्ति	समापत्ति
३२	१६	चित्तके बल	चित्त केवल
३२	२१	कहे गये	कहा गया
३५	२१	सबीजाः	सबीजः
३६	४	असानंद	ऽसानंद
३६	४	असास्मिता	ऽसास्मिता
३६	४	अस्मिता	असास्मिता
३६	२३	ऋतंभरेति	ऋतंभरा
३७	१५	प्रज्ञा	प्रज्ञ
३७	२२	ज्ञानभी	जाननी
३८	५	डारत	टारत
३८	२३	ऋतंभराक	ऋतंभराके
३९	५	रामबक्स	रामभक्त
४०	२२	इसक	इसका
४१	१५	तप	लय
४१	१५	अर्ध	अर्थ
४२	५	हुएक	हुएके
४३	२५	है	हे
४४	२४	एक	हगं
४४	२६	एक	हग
४५	१८	वसकर	वश होकर
४६	१६	दुख	दुःख
४७	२०	यहि	[illegible]
४७	२१	अविद्यादि दु	[illegible]

शुद्धाशुद्धपत्र.

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४७	२२	पुरुष	और	७०	२०	सास	अस
४८	१४	होता	होती	७१	१३	सत्वगुण	सत्वगुणको
४८	१९	यदि	यह	७३	२२	तेहि	कोई
४९	६	प्रसर्व	प्रसव	७४	१६	समझकर	समझाकर
४९	१२	सूक्ष्म	सूक्षम	७४	१७	एते जाति	जाति
४९	१९	क्लेश	कलेश	७६	७	रारसो	टारसो
५१	१७	अब कहत	कहत	७७	२	है	होती है
५३	३१	इते	देत	७७	३	क्लेश	क्लेशित
५६	२	सुख	जो सुख	७७	१०	खाज	साज
५६	३	परिणामताप जिहि सुखमें	जिहि सुखके परिणाम दुख	७८	३	प्रतिष्ठत	प्रतिष्ठित
५६	२४	न	नहिं	७८	५	रत्नोप्रस्थानम्	रत्नोपस्थानम्
५७	३	पुण्य	पुण्य नाना	७९	२०	पुनि	पुनि न
५७	६	यद्यपि होत सुख भोगमें अरु	भोगमें सुख होत यद्यपि	८०	६	अम	श्रम
५७	१३	तिय	जिय	८०	२४	हुई	होय
५८	२	रजसतते	रजसते	८७	१३	किय	किये
[illegible]	४	दुखका	दुखकर	८८	२१	जय	जस
५८	९	गतिहि	गहि	८८	२२	वृति	वृत्ती
५९	२२	प्रज्ञान	अज्ञान	८९	११	ग्रहत	गहत
६०	१३	संतति	संसृति	९१	३	जैसे	तैसे
६२	२१	देत	देत भोग	९१	११	चितका	चितको
६२	२२	और	औ	९१	१५	निसेधा	निसोधा
६३	३०	जित	जीत	९२	२८	रहत	रहत सर्व
६३	३०	ह	है	९५	९	जाते	जाति
६४	२	सना	सेना	९६	१३	योगीको	योगीकी
६४	१६	मूढ नहिं लेशा	नहिं मूढ कलेशा	९६	१६	न च	न च तत्
६४	२३	मनो	सुनो	९६	२३	परचित्तके विषयोंमें	परचित्त
[illegible]	१४	समझकरके	समझाकरके	९९	३	अड	आड
६६	७	भोक्ता कि	सुभोक्ताके	९९	१४	चंद्राम	चंद्रामें
	१९	कृताथ	कृतार्थ	९९	१६	ह	है
			जाना है	१००	१८	प्रकट	प्रकट हो
			है	१०२	४	२ ज्ञानरूप सदाको	सदा ज्ञानरूपको

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१०२	४	बुद्धिका	बुद्धिको	११४	२०	सिद्धी	सिद्धि
१०३	११	तिनका	तिनको	११४	२१	सब	सब सिद्धि मिल
१०४	४	जात	जास	११५	२	जन्मसे	जन्मसे अर्थात्
१०४	११	थलभांति	थलभांतिकी	११५	९	प्रकृतिके	प्रकृतीके
१०४	२५	जबसे	जयसे	११६	६	नदी	मेह
१०५	२४	इन्द्रियोंकी	इन्द्रियोंके	११६	२०	क्यारि	क्यारी
१०५	२६	नेत्रसे	तेजसे	११८	२०	संन्यासी	संन्यासियोंका
१०५	२६	गन्ध व पृथ्वीके	गंधसे	११९	११	भाष्यअनुसार	भाष्यऽनुसार
१०६	६	प्रकाशा-वरणाक्षयः	प्रकाशावर-णक्षयः	१२०	२६	मरूं	न मरूं
				१२१	१३	आश्रम	आश्रय
१०६	१४	महाविदेश	महाविदेहा	१२१	२२	प्रभाव	अभाव
१०६	१९	सूक्ष्मान्वयाथ	सूक्ष्मान्वयार्थ	१२१	२३	प्रभाव	अभाव
१०७	८	मानहूं	मानहुं	१२१	२३	सर्व	खर्व
१०७	११	मानहूं	मानहुं	१२२	१६	नहिं	नहीं
१०७	१९	आकाश प्राणीके	आकाशादिके	१२२	१९	कहै	करै
				१२२	२०	भूत	निज मन भूत
१०७	२५	सिद्धि	सिधि	१२४	६	कछु	कछू
१०७	२६	प्रकट	प्रकट और	१२५	१७	वस्तु कोउ	वस्तू कोऊ
१०८	५	महिकर	गहिकर	१२६	२	चित्तके	चित्तको
१०८	१२	वाशित्व	वशित्व	१२६	३	निमित्तके	निमित्तको
१०८	१७	करनेस	करनेसे	१२८	३	पुरुश	पुरुष
१०८	२१	संहनत्वानि	संहननत्वानि	१२९	३	कहाय	अवाह्य
१०८	२२	संपति	संपत्ति	१२९	७	अनवस्थित	अनावस्थित
१०९	१२	अमानो	अनुमानो	१२९	११	नहिं	नाहिं
१०९	२४	न	जिहि	१२९	१३	छामहीं	गावहीं
११०	२०	निमंत्रणा	निमंत्रण	१३०	१६	तिहि रूप है	रूप तिहि
११०	२१	हुए	हुइ	१३१	५	चित शुद्ध है	शुद्ध चित
१११	३	सुख	सुःख	१३२	९	तोई	जोई
१११	७	यापांह	यापांहि	१३२	११	आयों	आयो
१११	१६	सब	कृत	१३२	१९	बृद्धि	बुद्धि
११२	२५	नाकाके	नौकाके	१३२	२३	इन	इनके
११३	११	परमानंद्	परमानँद	१३३	२०	हानमेषा	?

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१३४	५	लहै समा-धिक अक्षय	लह समाधिकर अक्षत
१३५	९	पाप	पाय
१३५	११	सुमुख्य	अदुःख
१३६	२	प्रगटन	प्रगटत
१३६	६	अतक्षिण	अंतक्षिण
१३६	६	न	हि
१३६	७	मान	भान
१३७	२	तेही	घरहीं
१३७	४	अंतवा	सअंत
१३७	७	सब	तब
१३८	८	हे	है
१३८	१५	केवल मुक्ती	देखहु मुक्ती
१३८	१६	परमानंद	परमानँद
१३८	२५	जगदेवाकाम	जगदेवाश्रम
१३९	२१	रामबकसकी	रामबकसकर
१३९	२१	यह	अस

इति शुद्धाशुद्धपत्र समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
'लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर' छापाखाना,
कल्याण—मुंबई.

